वर्ग-चेतना
का
आद्यन्त

गिरधारीलाल व्यास

वर्ग-चेतना का आद्यन्त

लेखक गिरधारीलाल व्यास

प्रकाशक
गिरधारीलाल व्यास
छबीली घाटी
बीकानेर 334005
फोन न 0151-2549990

प्रथम सस्करण 2008 ई
मूल्य साठ रुपये मात्र
मुद्रक साखला प्रिंटर्स विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड बीकानेर 334003

Rs 60/-

:लवे वर्कशॉप मे हथौडा चलाने वाले जुझारू खलासी, मशीनमैन सर्वहारा
प्रत्येक जन-सघर्ष मे अग्रणी
एव
सतत सजग कम्युनिस्ट

कॉ शिवकिशन जोशी 'सन्नू'

(20 अप्रैल, 1933—26 नवम्बर 2005)

'सन्नू'

औपचारिक शिक्षा

आठवी कक्षा तक

स्वाध्याय और अनुभव द्वारा प्राप्त समझ या चेतना स्तर

आचार्यों-प्राचार्यो से बेहतर।

पेशा

सन् 1956 मे रेलवे मे खलासी (आग झोकने वाला मजदूर) वर्कशॉप मे हथौडा चलाने वाला मशीनमैन, साथ ही ट्रेड यूनियन आन्दोलन मे प्रवेश।

सघर्ष

सन् 1960, 1968 और 1974 की हड़तालो की अग्रिम पक्ति के जुझारू नेताओ मे।

पुरस्कार

तीन साल तक बर्खास्त जेल सीखचो मे मुफलिसी का दौर।

वक्ता

अत्यन्त प्रभावशाली और श्रोताओ मे जोश भरने वाला।

आजीवन सक्रियता

स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर सन् 1982 से अवैतनिक पूरा वक्ती कम्युनिस्ट नेता प्रत्येक जन-आन्दोलन मे अगुआ और कुछ समय पहले फिर 28 दिन तक जेल यात्रा और

शेष

कसकती स्मृति।

	शीर्षक	पृष्ठाक

कम्युनिस्ट अपने विचारो और लक्ष्यो को छिपाना नही चाहते। वे साफ-तौर पर घोषणा करते हैं कि वे अपने लक्ष्यो को पूरी तरह तभी प्राप्त कर सकते हैं जब वर्तमान सामाजिक स्थितियो को ताकत के जरिये ध्वस्त न कर दे। कम्युनिस्ट क्रान्ति से शासक वर्ग थर्राते हैं तो थर्राएँ। सर्वहाराओ के पास खोने के अलावा गँवाने को कुछ नही है और जीतने के लिए सारी दुनिया है।

—कार्ल मार्क्स-फ्रे एंगेल्स कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र'

पृष्ठभूमि

एप मैन' (मानवाभ या वानर) की अवस्था से होमोसैपियन्स (आधुनिक प्रज्ञ मानव) की अवस्था तक पहुँचने मे मानव को अठारह-बीस लाख साल लगे। पहाडो की ऊँचाई के सामने वह एक छोटे-से-छोटे रजकण के समान था—लघुता का प्रतिमान। पहाड उसे डरावने लगते थे। समुद्र उसे लीलने-से आते दिखाई देते थे। नदियो के प्रवाह उसे बहा लेने को उछलते आते थे। घाटियो और मैदानो मे तीखे नाखूनो और भयकर लम्बे-तिरछे-मजबूत दाँतो वाले हिसक पशु उसे खाने को दौडते थे। उनके चगुल से बचाने वाला कोई नही था। उनका मुकाबला करने के लिए मनुष्य के पास न तीखे नाखून थे और न ही काट सकने वाले मजबूत दाँत। वह मजबूर था हीनता से ग्रस्त था। प्रकृति के सामने याचक-सा दिखाई देता था वह उसके रहस्यो से अभिभूत होकर उसमे अदृश्य शक्ति का अनुमान लगाता था अत उस रहस्यता को भेदने मे अक्षम होने के कारण उसकी लाचारी ने उसे घुटने टेक कर मिन्नत करने या प्रार्थना करके मनावन करने के लिए विवश कर दिया था। किन्तु स्तनपायी प्रजाति का होने के कारण वह अपने युगल (एक औरत+एक आदमी) रूप म मानव से मानव के उत्पादन' के श्रम का कर्ता-धर्ता था। इस मानव से मानव के उत्पादन पर उसका अपना अधिकार था यह उसकी आन्तरिक सहजात प्रकृति थी प्रवृत्ति थी जिसके मूल मे उसकी जिजीविषा थी—जीने की प्रबल इच्छा थी। इस जिजीविषा की वजह से ही वह अपने समुदाय अथवा यूथ का निर्माता उसका धारक एव अपने-आप मे ही स्वानुशासित स्वय सरक्षक और श्रमजीवी बना।

यहाँ इस बात की ओर सकेत करना अनुपयुक्त नही होगा कि मानव युग्म मे नारी मे एक सहज आकर्षण शक्ति होती है जैसे पृथ्वी मे हुआ करती है। नर उस आकर्षण शक्ति से स्वभावत आकर्षित होता है। इसके परिणामस्वरूप सहयोग या सहभागीदारी की स्थिति बनती है और बीजरज के घाल-मेल से नवाकुर अकुरित होने लगता है। गर्भगृह मे आकारित होकर वह नवजात के रूप मे विस्फोटित होकर मानवी उत्पाद के रूप मे नवोन्मेषित होता है। यहाँ यह ध्यान मे रखना होगा कि गर्भस्थ का उत्पादन भार नारी को ही वहन करना होता है पैदा होने पर अपने ही तन-मन से पालन-पोषण करना होता है अत

यह सम्पूर्ण विश्वास के साथ प्रमाणित किया जा सकता है कि फलाँ नवजात किस माँ का है पिता के मामले मे यह स्थिति भले ही सन्दिग्ध हो। बच्चे की पहचान माँ से है इसीलिए मातृप्रधान समाज-व्यवस्था मे माँ के नाम पर गोत्र का नामकरण हुआ करता था---इतिहास इसका गवाह है। उदाहरण के लिए---अदिति से आदित्य दिति से दैत्य दनु से दानव विनता से वैनतेय कद्रू से कद्रवेय कपिला से कापिल, कृत्तिका से कार्त्तिकेय आदि गणगोत्र। इसी तरह सन्तान का नाम माँ के नाम पर होता था जैसे---अदिति की सन्तान का नाम आदित्येया या आदित्य, निऋति की सन्तान का नाम नैऋत्येया , सिंहिका से सिंहिकेया वसु से वासव या वसव साध्या से साध्य विश्वा से विश्व भानु से भानव आदि।

मातृसत्ता-समाज के विषय म विस्तृत वर्णन को दोहराना अनावश्यक है। केवल इतना जान लेना आवश्यक है कि सामुदायिक व्यवस्था मे खाद्य-सग्रहण पशुपालन और शिकार से जो भी उत्पादन होता था उसके समान वितरण का अधिकार सबसे बुजुर्ग नारी (माँ) को प्राप्त था। वस्त्र की बुनावट भी नारी ही करती थी। दूध से विविध प्रकार के उत्पाद भी नारी ही बनाती थी।

यद्यपि नारी और नर मे पहला श्रम-विभाजन हो चुका था किन्तु न तो शोषण की स्थिति थी और न ही असमानता या सम्बन्धो की विषमता की। इसलिए न कोई वर्ग था न कोई वर्ग-भेद और न ही किसी प्रकार की वर्ग-चेतना।

प्रागैतिहासिक-काल से ही मानव-जीवन स्वत प्रेरित अथवा स्वत स्फूर्त श्रमशील प्राणी का या श्रमिक का जीवन रहा है। यह इसलिए कि श्रम ने ही उसे वानर की प्रजाति से मानव की प्रजाति के रूप मे विकसित किया जैसा कि फ्रेडरिक एंगेल्स ने अपने आलेख वानर से नर बनने मे श्रम की भूमिका मे सावित किया है। श्रम ने चौपाए वानर को दोपाया दोहत्था (दो हाथ वाला) 'मानव बना डाला। मुक्त किए गए हाथो ने श्रम के द्वारा मानव को पत्थर के उत्पादक उपकरणकर्ता के दरजे तक पहुँचाया। जो श्रम-समूह अथवा यूथाचारी समुदाय जगल-दर-जगल घुमक्कडी करते हुए पेडो से गिरे फल बेरियाँ पक्षियो के अण्डे खाने योग्य जड़े कीड़े-मकोड़े और खोहो मे छिपे छोटे जानवर पकड़ कर खाद्य सग्रह करता और वितरण हेतु अपनी बड़ी माँ को सौंप देता था। उसने पत्थर की हाथ-कुल्हाड़ियाँ जमीन खोदने का मूसल और डण्डा बना कर शिकार करने का काम शुरु कर दिया।

पहले जो जगल की आग से डर कर भाग जाता था उसकी चेतना मे

1-चेतना का अधन्त

एक तरकीब पैदा हुई और उसने आग पर काबू पा लिया। अब माताओ को जो शिकार सौंपा था उन्होने काबू की गई आग मे मास पकाना शुरू कर दिया जिससे उसका स्वाद ही बदल गया। आग ने न केवल मास पकाने का हुनर दिया अपितु उसने हिसक पशुओ को भी डरा कर भगाना सीख लिया। इससे उसमे निडरता और आत्म-विश्वास बढने लगा।

एक कदम और आगे बढकर उसने पत्थरो और हड्डियो से नुकीले भाले चाकू खुरचनियाँ छेदक सूए सूइयाँ और काँटेदार बर्छियाँ बनाने मे कामयाबी हासिल की। इससे वह महागजो तक का शिकार करने मे सक्षम हो गया। शिकार और कपडे की बुनावट ने उसके जीवन मे अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया। उसका हौसला बढता गया जिजीविषा प्रबलतर होती गई। श्रम, तरकीब और अनुभव के साथ-साथ उसके मस्तिष्क का भी विकास होने लगा एव उसकी चेतना व्यापक होने लगी।

यह धीमी गति का विकास मानव के कम-से-कम पन्द्रह लाख सालो के श्रमिक अनुभव का प्रतिफल था। लिखने मे चाहे चन्द मिनिट ही खर्च हुए हो किन्तु हाथो का पृथक् अस्तित्व मे आना वाणी यन्त्र का खुलना आग का उपयोग करना उपकरणो का निर्माण करना व उनमे लगातार सुधार और नवीनीकरण करना आदि—मानव का अपने श्रमानुभव से खुदी का खुद के द्वारा ही निर्माण रूपान्तरण और परिवर्तित करना था। इसी दौर मे उसने गुहावास से बाहर निकल कर लट्ठो हड्डियो, सीगो और मृत पशुओ की खालो से अपने आवास बनाना चालू कर दिया।

जब घर बना तो माँ को उसे सँभालना ही था उसने मालकिन की भूमिका ग्रहण कर ली।

आज से लगभग 10 हजार साल पहले आदमी ने प्राथमिक विज्ञान के त्र मे प्रवेश कर एक चामत्कारिक हथियार आविष्कृत कर दिया। यह हथियार था धनुष-बाण—एक जटिल प्रक्रिया का परिणाम। यह शिकार अथवा दुश्मन पर दूर से मार कर सकता था। इसे आज की मिसाइल का पुरोधा कह सकते है। यह वह हथियार था, जिसे आज भी आदिवासी उसी तरह धारण करते है काम मे लेते है।

ऐसा ही एक चमत्कार घर की मालकिन नारी—माँ ने कर दिखाया। उसने कई बार देखा कि पिछले दिनो जो बचे-खुचे बीज घर के पास छोटे-से गड्ढे मे डाल दिए थे उन पर मिट्टी की परत छा गई थी। बीज अकुरित होकर

ऊपर आ निकले और उन पर धूप और पानी पड़ने से वे फलदार पौधो के रूप मे बढ़ चले। बार-बार के निरीक्षण से नारी—माँ को लगा कि वह कुदाली से गड्ढा खोद कर उसमे बीज डाले तो कुछ समय बाद वह पहले पौधा बन कर फिर पेड़ बन सकता है। उसने ऐसी ही प्रक्रिया चालू कर दी और उससे वाछित परिणाम सामने आने लगे। इससे कृषिकार्य का अथवा कृषि-सस्कृति का जन्म हुआ। नारी ने नर को समझाया— देखो, यह ऐसा करने से ऐसा होता है।' आदमी की समझ मे आ गया तो उसने ज्यादा पैदा करने के मकसद से कुदाली को हल के रूप मे एक नया रूप दे डाला। इससे अब खेती व्यापक जमीन का धन्धा बन गया। जब एक कबीले के पास यह धन्धा हाथ लग गया तो दूर के कबीलो मे भी डाह पैदा होने लगी।

नतीजा यह हुआ कि कबीले धनुष-बाण भाले से लैस होकर जमीन हथियाने के लिए आपस मे लड़ने लगे। प्रत्येक गण ने अपने अलग-अलग चिह्नो वाले झण्डे तैयार कर लिए और मैदान मे आ डटे। किसी गणनायक के झण्डे पर हाथी का आकार अकित था तो किसी के झण्डे पर चूहे का चिह्न। प्रत्येक गण का एक नायक या सेनापति होता था। यदि हाथी के चिह्न का झण्डा चूहे के झण्डे के गणनायक या गणेश वाले गण से जीत गया तो हाथी वाले सेनापति या गणपति को चूहे वाले झण्डे के गण का स्वामी मान लिया जाता था। हाथी वाला दल मालिक और चूहे वाला दल उसका दास। अब ढिढोरा पिट गया— हाथी ने चूहे की सवारी की। कालान्तर मे प्रतीक बना गणेश (सूँड वाले देवता) की सवारी चूहा। यही प्रतीक आज भी घर-घर मे पूजा जाता है। इसी तर्ज पर विष्णु की सवारी गरुड़ शिव की बैल भैरव की कुत्ता व यम की भैंसा।

इस तरह की कबीलो की गणो की लड़ाइयो ने कृषिकार्य को माध्यम बना कर दास और दास-मालिक व्यवस्था को जन्म दिया। यह इतिहास का पहला वर्ग-विभाजन था क्योकि विजेता नायक पराजित गण के सभी नर-नारियो को पकड़ कर दास बना लेता था और उन्हे मार-पीट कर उनसे खेती व अन्य कार्य करवाता था।

कृषिकार्य के श्रम-विभाजन का स्वरूप हो गया—दास-मालिक के पास बिना श्रम किए मालिकाना हक अर्थात् दासो से मार-पीट कर करवायी गई मेहनत से प्राप्त उत्पादन पर पूर्ण अधिकार और इसके विपरीत दासो के पास बतौर कैदी मार खाकर काम करते रहने की नियति।

जिस कृषिकार्य का अनुसन्धान नारी—माँ ने किया था उसी के बूते पर हुई दासप्रथा ने मातृप्रधान समाज-व्यवस्था का विध्वस कर दिया। अब

उसका स्थान 'पितृसत्ता' ने ले लिया। वह 'माँ' अब अपनी ही वश-परम्परा की दासी बन चुकी थी, पत्नी बन चुकी थी मण्डी की वस्तु। अब सन्तान और गोत्र का नामकरण पुरुष के नाम पर हो गया। मातृदेवी हो गई थी देवदासी' देवता की पत्नी गण की गणिका, स्वर्ग की वेश्या (अप्सरा) और मालिक की रखैल भी नौकरानी भी।

श्रम-विभाजन का प्रथम वर्ग-विभाजन दास-प्रथा था और भारत मे यह श्रम-विभाजन वर्ण-विभाजन' का एक विशेष वर्गभेद बन कर सामने आया जिसने आगे चल कर जन्मजात जाति-विभाजन का वशानुगत जडत्व धारण कर लिया।

यह वर्ग-विभाजन (वर्ण-विभाजन सहित) वर्ग-चेतना की पृष्ठभूमि है।

प्रवर्तन

यह वस्तुसत्य है कि दास-प्रथा से लेकर आज तक का मानव-ससार शोषित और शोषक के दो वर्गों मे बँटा हुआ है। दानो वर्गों की वर्ग-चेतना वस्तुगत भी है और द्वन्द्वात्मक भी।

द्वन्द्ववाद विकासक्रम का मूल स्रोत है। यह द्वन्द्व का तर्कविज्ञान है। प्रत्येक वस्तु, परिघटना या समाज मे घात-प्रतिघात करने वाली विभिन्न शक्तियो और प्रवृत्तियो के अन्तर्विरोध अथवा टकराव से विकास के लिए नयी सम्भावना पैदा होती है। अन्तर्विरोध गतिशीलता का पर्याय है परिवर्तन का कारक।

कार्ल मार्क्स और एगेल्स ने अपने पूर्ववर्ती द्वन्द्ववादी विचारकों—हेराक्लिट्स एपिक्यूरस, अफलातून काण्ट, फिख्ते शेलिंग फायरबाख और हेगेल आदि की दार्शनिक द्वन्द्ववादी प्रणालियो का गहन अध्ययन और आलोचनात्मक विश्लेषण किया। उन्हाने इनसे जो लेना था लिया और छोडना था उसको छोड दिया। साथ ही उन्होने समकालीन क्रान्तियो और सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनो का भी वस्तुवादी दृष्टि से विवेचन किया।

अपने जीवन की तिक्त अनुभूतियो सवेदनाओ, आलोचनात्मक अथक अध्ययनो दार्शनिक अनुसन्धानो और नवाचारो अपनी राजनीतिक सरगरमियो और शिखरस्थ साहित्य सर्जनाओ के अभूतपूर्व सश्लेषण से मार्क्स द्वन्द्वात्मक एव ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रणेता के रूप मे सन्दर्भित हुए। मार्क्स, एगेलस की रचनाओ को बिना उनकी द्वन्द्वात्मक रचनाप्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित किए नही समझा जा सकता। भौतिकवादी द्वन्द्ववाद तथा सामाजिक विकास निम्नाकित नियमो पर आधारित हैं—

1 विरोधियो की एकता और उनका सघर्ष

2 परिमाणात्मक से गुणात्मक रूपान्तरण

3 निषेध का निषेध

इनके स्पष्टीकरण की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि इनकी विस्तृत व्याख्याएँ व्यापक तौर पर की जा चुकी हैं और हर अध्येता इन्हे भली प्रकार समझता है।

मार्क्स-एंगेल्स के कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा-पत्र' का विषयानुक्रम इस प्रकार है जो प्रथमदृष्टया ही उपर्युक्त पहले बिन्दु की ओर ध्यान आकृष्ट कर लेता है—

1 Bourgeois and proletarians (पूँजीपति और सर्वहारा)

2 *Proletarians and communists* (सर्वहारा और कम्युनिस्ट)

3 Socialist and communist literature
(समाजवादी और कम्युनिस्ट साहित्य)

I Reactionary socialism (प्रतिक्रियावादी समाजवाद)

(a) *Feudal Socialism* (सामन्ती समाजवाद)

(b) Petty Bourgeois socialism (निम्न पूँजीवादी समाजवाद)

(c) German or True socialism (जर्मन या सच्चा समाजवाद)

II Conservative or Bourgeois socialism (कट्टरपन्थी या पूँजीवादी समाजवाद)

III Critical Utopian socialism and communism (आलोचनात्मक (कुतर्की) काल्पनिक समाजवाद और कम्युनिज्म)

4 Position of the communists in relation to the various existing opposition parties
(विद्यमान विभिन्न विपक्षी दलो के सन्दर्भ मे कम्युनिस्टो की स्थिति)

कम्युनिस्ट घोषणापत्र' का उपर्युक्त विषयानुक्रम दो प्रकार की सहस्थिति और भिन्नता की द्वयता की ओर इगित करता है। यह द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को सूचित करता है। यह पचास-पृष्ठीय पुस्तिका सन् 1848 से आज तक सवादोत्तेजक साबित हो रही है। यह दो रचनाकारो—मार्क्स, एंगेल्स की एकाकी रचना है। इसे अन्तरराष्ट्रीय क्रान्तिकारी कृति के रूप मे सार्विक स्वीकृति प्राप्त है। बेजोड तो है ही। ये हैं इसकी चन्द उद्धृत पक्तियाँ जो वर्ग-चेतना की ओर इशारा करती है—

> यूरोप को एक प्रेत भयभीत कर रहा है—कम्युनिज्म का प्रेत। पुराने यूरोप के पोप और जार मैटरनिक और गुईजोट फ्रेंच रैडिकल्स और जर्मन गुप्तचर पुलिस जैसी सारी ताकतो ने इस प्रेत को झाड़-फूँक से भगाने के लिए एक पवित्र सहबन्ध कर लिया है।'

यूरोप की तमाम शक्तियो ने कम्युनिज्म को स्वयमेव उभरती शक्ति के रूप मे पहचान लिया है।'

आज तक का सारा इतिहास (प्रस्तर युग के सामुदायिक युग को छोड कर) वर्ग-सघर्ष का इतिहास रहा है।'

कम्युनिस्ट अपने विचारो और लक्ष्यो को छिपाना नागवार समझते हैं। वे साफ तौर पर घोषणा करते हैं कि व अपने उद्देश्यो को पूरी तरह तभी प्राप्त कर सकते हैं जब वर्तमान सामाजिक स्थितियो को ताकत के जरिए ध्वस्त न कर दे। कम्युनिस्ट क्रान्ति से शासकवर्ग थरते हैं तो थराएँ। सर्वहाराओ के पास जजीरो की जकडनो को खोने के अलावा गँवाने को कुछ नही है और जीतने के लिए सारी दुनिया है।'

दुनिया-भर के मेहनतकशो एक हो।'

यही ओज यही ऊर्जा, यही ज्वलन्त द्वन्द्वात्मक चेतना मार्क्स-एगेल्स की प्रत्येक रचना मे है। यह ज्वाला उन्हे तत्कालीन सर्वहाराओ की क्रान्तियो से प्राप्त हुई थी किन्तु साथ ही उनके विश्लेषणात्मक गहन अध्ययन सर्वहारा चेतना का आत्मीकरण, विज्ञानसम्मत निष्कर्ष निकालने की कुशाग्रता की भी अहम भूमिका थी।

मार्क्स और एगेल्स की चेतना अपनी आनुवशिक वर्ग-चेतना को तिलाजलि देकर प्रबुद्ध सर्वहारा वर्ग की चेतना मे घुल-मिल गई थी अथवा उन्होन वर्गच्युति का स्वयमेव अगीकार कर लिया था।

मार्क्स-एगेल्स द्वारा प्रतिपादित चिन्तन को दार्शनिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहा जाता है। इसे गहन अध्ययन का परिष्कृत अथवा नवाचारित सस्करण भी कहा जा सकता है और अनुसन्धान भी। इसी को एक शब्द मे *मार्क्सवाद* के नाम से *अभिहित कर दिया गया है।*

मार्क्सवाद मे केवल मार्क्स के ही रचनाकर्म की ओर सकेत जाता है जबकि एगेल्स के बिना मार्क्स को समग्रता के साथ ग्रहण नहीं किया जा सकता। यह सही है कि एगेल्स ने स्वय ने अपने योगदान सहित सारा श्रेय मार्क्स के खाते मे ही डाल दिया था किन्तु *समग्रता के साथ* देखन पर मार्क्सवाद *एकागी-सा लगता है।* दूसरे कार्ल मार्क्स ने स्वय ने कभी इसे स्वीकार नहीं किया। लेकिन अब यह इतना व्यापक हो चुका है कि इसे नकारा नहीं जा सकता।

वैसे भारतीय दर्शनो का नामाकन व्यक्तिपरक कही नही दिखाई देता—— जैसे दर्शन की पहचान साख्य से है न कि कपिलवाद से इसी तरह 'लोकायत' 'योग', 'न्याय', मीमासा' वेदान्त' अनेकातवाद या स्याद्वाद' (जैन दर्शन) 'सम्यक् समुत्पाद' (बौद्ध दर्शन) आदि की पहचान उनके प्रणेता के नाम से नही बल्कि चिन्तन–केन्द्र पर है। 'गॉधीवाद' कहने से हमारे ध्यान मे स्वत सशक्त अहिसा और असहयोगात्मक सत्याग्रह' प्रमुख विचारबिन्दु आ जाते है।

एक और विडम्बना यह भी है कि 'मार्क्सवाद' के साथ लेनिनवाद स्टालिनवाद माओवाद और जोड दिया गया जिससे मार्क्सवाद' एक ऐसी बेमेल खिचडी बन गयी एक अजीब–सी रस्साकसी। मेरी मान्यता है कि मार्क्स के साथ प्रतिष्ठित होने का एकमात्र हकदार है तो केवल उसका समकालीन सहचिन्तक अभिन्न सहयोगी सघर्षशील—फ्रेडरिक एगेल्स ही है। अन्य कोई नही। इसलिए मार्क्सवाद' ही अगर मान्य हो, जो हो चुका और है भी तो काल और परिस्थितियो के अन्तराल और उनकी भिन्नता को दृष्टिगत रखते हुए अन्य वादो' को जोडना तर्कहीनता का परिचय देना होगा। लेनिन स्टालिन और माओ भाष्यकार और बलिदानी युगपुरुष हो सकते हैं—लेकिन दार्शनिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रणेता कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगेल्स के समकक्ष नही। सार्वत्रिकता को परिधियो मे नही समेटा जा सकता।

कार्ल मार्क्स की सबसे बहुमूल्य रचना है— पूँजी'। इसकी रचना मे मार्क्स को 20 साल तक अथक परिश्रम करना पडा। इसका पहला खण्ड मार्क्स के जीवनकाल मे ही प्रकाशित हो चुका था, वे दूसरे खण्ड की पाण्डुलिपि तैयार कर चुके थे लेकिन वे उसकी प्रकाशित प्रति नही देख सके। तीसरे खण्ड के लिए उन्होने नोट्स लिखे थे। एगेल्स को पता था कि उसके अभिन्न मित्र की यह अन्तिम आकाक्षा थी कि वे इसकी पाण्डुलिपि तैयार कर देते लेकिन वे ऐसा न कर सके। मार्क्स की पूँजी के इस तीसरे खण्ड को लिपिबद्ध करने और प्रकाशित करने का गुरुतर दायित्व एगेल्स ने वहन किया। एगेल्स के लिए सबसे बडी अड़चन थी मार्क्स के नोट्स की लिखावट को साफ–तौर पर समझ सकना क्योकि मार्क्स की लिखावट अस्पष्ट, साकेतिक और अक्षरो की बनावट महीन से महीन होती थी। एगेल्स ने अपने अथक परिश्रम से रात–दिन एक कर अपने जीवन के आखिरी सात–आठ सालो मे उसे लिपिबद्ध किया प्रूफ देखे और उसे प्रकाशित करवाया।

प्रकाशित प्रति हाथ मे आते ही उनके मुँह से निकला— दोस्त मूर, मैंने अपनी और तुम्हारी इच्छा पूरी कर दी, आज मै खुद को मुक्त महसूस कर रहा हूँ।

कार्ल मार्क्स ने 'पूँजी' की रचना मे 'माल' को अपना प्रस्थानबिन्दु बना कर अथवा माल' पर ध्यान सकेन्द्रित कर उसे केन्द्रबिन्दु बनाया। 'पूँजी' का सबसे पहला अनुच्छेद इन शब्दो से आरम्भ होता है— जिन समाज-व्यवस्थाओ मे उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली प्रमुख रूप से पायी जाती है उनमे धन मालो के विशाल सचय' के रूप मे सामने आता है और उसकी एक इकाई होती है माल। इसलिए हमारी खोज अवश्य ही माल के विश्लेषण से आरम्भ होनी चाहिए।'

माल वह केन्द्रीय वस्तु है जो इन्द्रिगम्य है। वह श्रम है—मूर्त भी अमूर्त भी। वह उत्पाद है, जो एक निर्धारित प्रक्रिया से होकर गुजरा है वह भू-प्रदत्त कच्चे माल से जुडा है जमीन से जुडा है अनेकानेक हाथो से जुडा है वह विनिमय से जुडा है, वह मुद्रा से जुडा है मूल्य और मूल्यो के प्रकारान्तरो स जुडा है वह तकनीक ज्ञान और विज्ञान से जुडा है। वह उत्पादक शक्तियो वर्गीय सम्बन्धो वर्गीय विचारो और बाजार से जुडा है। वह तख्तोताज तोप-तलवारो झगडो-लडाइयो से जुडा है। वह एक देश से दूसरे देश मे आवागमन करता है वह विश्वव्यापी है—वैश्विक है वह सत्ता-सन्तुलनो की कड़ी है। वह जाल-जजाल मे छिपा है वह हृदय का हार है तो लुटेरो की लूट। वह साहित्य और सस्कृति की सर्जना मे निहित है। वह राग-द्वेष प्रेम-वैर परिवार धर्म सम्प्रदाय भूगोल-खगोल इतिहास दर्शन आदि सबसे सम्बद्ध है। वह तन-मन मे धन मे और छिपी प्रवृत्तियो मे बिम्बित-प्रतिबिम्बित है।

कार्ल मार्क्स ने इसक कण-कण का विश्लेषण कर इसके माध्यम से भौतिक विश्व के द्वन्द्वत्व का पता लगाया। अपनी समूची प्रतिभा रचनात्मक ऊर्जा यहाँ तक कि अपनी समग्र श्रम-क्षमता को झोक कर पूँजी को आजस्विता प्रदान की।

मार्क्स ने कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी जिसमे किसी दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया हो, फिर भी वे अपनी विविध रचनाओ (जिनमे सर्वोत्कृष्ट और प्रभावपरिपूर्ण पूँजी सम्मिलित है) के माध्यम से विश्व-दृष्टिकोण का विकास करने मे समर्थ हुए। युगा-युगो तक के महानतम दार्शनिक बने। उन्होने अपनी सभी कृतियो मे दार्शनिक-ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रतिपादन किया। इनमे से भी कोई पूछे कि एकमात्र कौन-सी पुस्तक को अध्ययन के लिए चुना जाय तो जवाब होगा— पूँजी ।

कार्ल मार्क्स छात्रावस्था से ही कविताएँ और कथा-साहित्य रचते चले आ रहे थे। 19 साल की युवावस्था तक उन्होने काव्य और गद्य की उच्चकोटि की अनेक रचनाओ को लिपिबद्ध करके सकलित कर दिया था। इनमे कई तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित भी हो चुकी थी। लेकिन उनकी एक प्रवृत्ति थी—स्वय की निर्मम आलोचना करना। उन्होने सन् 1837-38 मे अपने साहित्य-सृजन का आलोचनात्मक सिहावलोकन किया और अपने पिता को एक पत्र लिखा—

हमारे आधुनिक जीवन पर आक्रमण, भावना की बेतरतीब और अपरिपक्व अभिव्यक्तियॉ कुछ भी स्वाभाविक नही, सब-कुछ मनगढत क्या है और क्या होना चाहिए के बीच पूर्ण विरोध काव्यात्मक विचारो की जगह आडम्बरपूर्ण विचार लेकिन सम्भवत भावना की कुछ गर्मजोशी और काव्य प्रेरणा की लालसा भी।' (और गम्भीर मूल्याकन के बाद) 'और मेरी सम्पूर्ण रचनाएँ टुकडे-टुकडे होकर भस्म हो गयी।' इस प्रकार मार्क्स ने अपनी कविताओ और उपन्यासो के प्रारूपो को आग के सुपुर्द कर दिया। इसके बाद वे आयु के दूसरे दशक मे प्रवेश के साथ विधि और दर्शन के गहन अध्ययन मे तल्लीन हो गए। एक वर्ष मे जितना गम्भीर अध्ययन मार्क्स ने किया उतना शायद ही किसी ने किया हो।

यहॉ उस कवि उपन्यासकार और मेधावी रचनाकार के द्वारा उपर्युक्त निर्णय और उसकी क्रियान्विति के रूप मे किए गए दाह-कर्म के औचित्य पर प्रश्नचिह्न लगाया जा सकता है।

यहॉ यह विचारणीय प्रतीत होता है कि काव्य-सृजन और कथा-कथन या इसी प्रकार की साहित्यविधा भावना कल्पना और सवेदनात्मक भावुकता अथवा अहता से इतनी परिपूर्ण हो जाती है कि उसकी परिधि मे दार्शनिक और वैज्ञानिक तर्कसगति प्रवेश ही नही कर सकती। उसका केन्द्रीय उद्देश्य सवेदनाओ और सवेगो को सस्पर्शित अथवा उत्तेजित करना होता है— आवश्यक नही कि वह प्रभाव या प्रवाह परिष्कार या प्रबोधन का हेतु भी बने।

दूसरी बात यह है कि कवियो और उपन्यासकारो की पक्ति मे खड़ा होकर कवि और कथाकार मार्क्स महत्त्वपूर्ण स्थान सम्मान पुरस्कार आदि प्राप्त करने मे भले ही कामयाब हो जाता किन्तु वह वह कार्ल मार्क्स नही बन सकता था जिसने ईश्वर के अस्तित्व की अन्त्येष्टि करने मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की जिसने द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद का प्रतिपादन कर वर्गीय समाज' के वर्गों का वस्तुगत आधार पर विश्लेषण किया

वर्ग-चेतना और वर्गसंघर्षों की भूमिका को उजागर किया चेतना को पदार्थीय प्रतिबिम्ब साबित किया और मानव-इतिहास के विविध आयामो को प्रकाशित किया। सर्वहारा की क्रान्तिकारी क्षमता और गुणवत्ता को केवल कार्ल मार्क्स ने ही पहचाना। क्या कोई कवि या कथाकार युगो-युगो के पारदर्शी कार्ल मार्क्स के मुकाबले मे रखा जा सकता है?

अकेला कार्ल मार्क्स (एंगेल्स युक्त) लाखो बल्कि करोडो कवियो और कथाकारो आदि साहित्यकर्मियो की अपेक्षा अधिक वजनदार है।

आज तक के पूँजीवाद के लिए सबसे बडी चुनौती कार्ल मार्क्स की पूँजी है कम्युनिस्ट घोषणा पत्र है। जब तक पूँजीवाद कायम रहेगा तब तक पूँजी' की मानवता की शोषित-पीडित वर्ग (प्रमुखत सर्वहारा वर्ग) की चुनौती और मार्क्स द्वारा निर्धारित विकल्प अपने परिस्थितिजन्य विकसित रूपो मे कायम रहग। यदि वैश्विक पूँजीवाद अपने और मानव प्रजाति के विध्वस का कदम उठाने मे कामयाब नहीं हुआ तो एकमात्र विकल्प कार्ल मार्क्स का दिशासकेत ही होगा—अपने विकासानुक्रम मे।

वर्ग-चेतना के विकास की पारदृष्टि वर्गहीनता के क्षितिज की ओर उन्मुख है।

वर्ग–चेतना पहला चरण (दासप्रथा)

दासप्रथात्मक सामाजिक सरचना

1 **कबीलाई व्यवस्था द्वारा प्रदत्त धरोहर**—उत्पादन के उपकरण धनुष–बाण आवास वस्त्र अग्नि, वाणी अन्धविश्वास आत्मा–प्रेतात्मा मे विश्वास जादू–टोना लेखन, चित्रण मूर्तन भाण्डे सोने–चाँदी के गहने, पशुपालन शिकार, मछली–पालन शिल्प प्रारम्भिक कृषि गोत्र समुदाय और उनका विघटन और ग्राम समुदाय व कबीलाई मुखियाओ की वृद्धि कृषि से सम्बन्धित प्राकृतिक शक्तियो की उपासना बलिप्रथा आदि।

2 **विजयी कबीला**—दासस्वामी भू–सम्पत्तिवान मवेशियो के रेवड का मालिक उत्पादन का तथा उसके साधनो का मालिक इमारतो का स्वामी सोने–चाँदी का मालिक होता था। उसका नायक अहकारी क्रूर शोषक खुशामद पसन्द ऐय्याश और पाखण्डी होता था।

3 **किसान**—छोटी–छोटी जोतो का अधिकारी अपने काम के औजारो का मालिक थोडे–से पशुओ का पालक अपनी मेहनत की कमाई का एक भाग सम्भ्रान्त वर्ग को देने को विवश गरीबी और कर्ज से त्रस्त ताबेदार अन्धविश्वासी और हताश।

4 **दास**—नितान्त सम्पत्तिहीन, दासमालिको की आजीवन सम्पत्ति मण्डी मे खरीद–फरोख्त की वस्तु आवासरहित, परिवाररहित असह्य उत्पीडन का शिकार रुचिरहित यन्त्रवत्, हताश असहाय पलायनातुर सम्भ्रान्तो के मनोरजन के लिए विवश नीरस मालिक का उपकरण मात्र तथा चौबीसो घण्टे जजीरो मे जकडा हुआ।

5 **अन्य**—इमारती कारीगर और पेण्टर शिल्पी लेखक सैनिक चित्रकार मूर्तिकार बुनकर नाविक, मछुआरे व अन्य छोटे घरेलू काम–काजी आदि।

6 **भारत मे वर्ण–व्यवस्था**—चार वर्ण—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और

बहिष्कृत दलित वर्ग अस्पृश्य प्रताडित और सिर पर मैला ढोने वाला दासानुदास।

7 **प्रमुख प्राचीन क्षेत्र**—प्राचीन मिस्र, मैसोपोटामिया, प्राचीन भारत श्रीलका प्राचीन चीन प्राचीन यूनान और प्राचीन रोम।

चेतना—जब हम चेतना और विवेक की बात करते हैं तो हमे उसमे देश काल वस्तु राजनीतिक अर्थशास्त्र न्यायतन्त्र साहित्य, सस्कृति कला-प्रकार, व्यष्टि और समष्टि की मानसिकता और सामाजिक अवस्था के अन्तर्ग्रन्थन तथा अन्तर्क्रियात्मकता को समाहित करना होगा।

दार्शनिक चेतना—चाहे तो इसे तात्त्विक चिन्तन कह दे। यह मूलत ससार की सरचना पर आधारित होता है। इसमे जिन प्रश्नो पर विचार किया जाता है वे है—यह जगत् किन तत्त्वो से बना है? उसे किसी ने अपनी इच्छा से बनाया है अथवा वह प्रकृति की गतिशीलता से रूपान्तरित होता रहा है? क्या इसको किसी अदृश्य शक्ति ने बनाया है? इसकी सरचना मे प्राथमिक पदार्थ है या चेतना?

दार्शनिक चिन्तन पदार्थ देश काल गति के सापेक्षिक अधिक होता है। इसमे वस्तुगत सत्य या विश्व के सरचनात्मक विकास का अनुसन्धान प्रमुख अन्तर्य्य बन जाता है। इसीलिए प्रत्येक क्षेत्र के तात्त्विक चिन्तन मे समरूपता और पारस्परिक प्रभाव एव निष्कर्ष परिलक्षित होते हैं। भारत के वेद उपनिषद्, लोकायत बौद्ध जैन षट्दर्शन आदि मे व्यक्त चिन्तन प्रकृति सापेक्ष होने के कारण विश्व-दर्शन के अभिन्न अग और आदान-प्रदान से विकसित हैं।

समूचा दार्शनिक विकास होमोसैपियस से आरम्भ होकर अपना विशिष्ट सातत्य बनाए हुए है तथा उसके प्रवाह की धाराएँ अपने प्रकारान्तर से बढती चली आ रही हैं। वे स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर ऊर्ध्वोन्मुखी होती चली जा रही हैं। चूँकि इस आलेख का यह प्रधान विषय नही है अत इसे अधिक विस्तार दिया जाना अपेक्षित नहीं है।

यद्यपि वर्ग-चेतना को दार्शनिक चिन्तन से असपृक्त नही किया जा सकता फिर भी उसका मूल आधार उत्पादन प्रणाली है और विशेष रूप से उत्पादन सम्बन्ध है अत दोनो को गड्डमड्ड करना उचित प्रतीत नही होता।

विज्ञान-चेतना—दर्शन-चेतना के समान विज्ञान-चेतना भी स्वायत्त होती है यद्यपि इसे वर्ग-चेतना से असलग्न नहीं कहा जा सकता। यह प्रयोगप्रधान होती है। इससे रचनात्मक और विध्वसात्मक दोनो प्रकार के उपकरण सृजित

किए जाते रहे है। विज्ञान के उपकरणो का उपयोग अधिकतर सत्तापक्ष के हिस्से मे ही आता है, किन्तु तत्त्वत उसका प्रभाव सार्वजनिक ही होता है।

विज्ञान-चेतना अन्धविश्वासो और धार्मिक पूजा-पद्धतियो का खण्डन करती है। यह मानव-जीवन के वस्तुगत सत्य का सबसे प्रमुख मानक है।

जीवन का कोई भी पहलू वैज्ञानिक अनुसन्धानो से पृथक् नही किया जा सकता। जैसे सगीत को बिना गणित के नही समझा जा सकता वैसे ही सूक्ष्मतम जीवन विधा को विज्ञान का सहारा लिये बिना नही ग्रहण किया जा सकता।

प्राय वैज्ञानिक और दार्शनिक चिन्तन एक ही पटरी पर चलते हैं। कार्य-कारण सम्बन्ध दोनो के सेतु का काम करता है।

वर्ग-चेतना—वर्गीय समाज-व्यवस्था मे मोटे तौर पर शोषक वर्ग की क्षेत्रीयता उसका कालखण्ड उसकी राजनीतिक-आर्थिक सरचना उसके साथ उसके सलाहकारो और पक्षधारको की मानसिकता, तत्कालीन सम्पादित साहित्यिक-सास्कृतिक एव कलात्मक क्रिया-कलापो का सश्लिष्ट स्वरुप तथा एक-दूसरी विधा की पारम्परिक प्रभावोत्पादकता को सोच के दायरे मे समेटना होता है। दूसरी ओर प्रमुख शोषित वर्ग एव उसके साथ ही अन्य शोषित समूह व उनसे सहानुभूति रखने वाले पक्षधारको के मानसिक उतार-चढावो के साथ उनकी प्रतिक्रियात्मक जीवन-सक्रियता को समझना भी आवश्यक होता है।

वर्ग से ऊपर की ओर सक्रमण—निम्न या मध्यम वर्ग का कोई व्यक्ति किसी भी स्थिति मे शोषक वर्ग मे चला जाय या ठेल दिया जाय तो उसकी चेतना शोषण की पक्षधरता मे बदल सकती है।

वर्गच्युति—उच्च या शोषक वर्ग से आया व्यक्ति सर्वहारा की जीवन-शैली मे जीने लगे और शोषित-उत्पीडित की पक्षधरता अपना ले तो वह वर्गच्युति कहलाती है। कम्युनिस्ट होने के लिए वर्गच्युति अपनाना आवश्यक होता है।

यहाँ इसी परिप्रेक्ष्य मे उपर्युक्त क्षेत्रो (मिस्र मैसोपोटामिया भारत चीन यूनान और रोम की तत्कालीन दासप्रथा वाले समाज की वर्ग-चेतनाओ पर दृष्टिपात किया गया है।

मिस्र—अफ्रीका महाद्वीप के उत्तरी-पूर्वी भाग मे स्थित है। महाद्वीप का हजारो किलोमीटर का इलाका रेगिस्तानी है किन्तु दक्षिण से उत्तर की ओर

इसमे विश्व की सबसे बडी सरिता नील बहती रहती है। वह मध्य अफ्रीका की बडी झीलो से निकलती है जो सात सौ किलोमीटर के बीच के चट्टानी प्रपातो को लॉघती हुई जब भूमध्यसागर मे गिरती है, तो कई शाखाओ मे बँट जाती है इस तरह यह बहुत बडा डेल्टा बनाती है। नील नदी की घाटी और डेल्टा मे चट्टानो के अवरोधो–महाप्रपातो से लेकर सागर तक का इलाका ही मिस्र था।

मिस्रियो का मुख्य धन्धा कृषि था। उन्होने अथक मेहनत करके नील की घाटी का कायाकल्प कर दिया। जो मिस्र पहले कभी लोगो के रहने के लिए कठिनाइयो से भरा था वह क्रमश घनी आबादी वाला कृषि–प्रधान क्षेत्र बन गया।

मिस्र मे वर्ग–विभाजन—मिस्र में जब कृषि का विकास हुआ तो कबीले आपस मे लडने लगे। जीतने वाले कबीले का सरदार हारने वाले कबीले के लोगो को अपना गुलाम बना लेता था। पहले तो गुलामो को मार डाला जाता था किन्तु बाद मे उन्हे मारना बन्द कर दिया गया और पराजित दासो से सुबह से लेकर रात तक ढेकलियो से पानी उठा कर खेतो को सींचने का काम करवाना शुरु कर दिया। दासो से नहरे खुदवाई जाती थी बॉध बनवाये जाते थे इमारतो के लिए पत्थर तोडने का काम करवाया जाता था। दास के पास अपना कुछ नही होता था। वे अपने मालिक की सम्पत्ति होते थे और उनसे जो–कुछ भी पैदा करवाया जाता था उस सब पर उनके मालिक का अधिकार होता था। दासो को सिर्फ उतना खाना दिया जाता था जितना उन्हे जिन्दा रखने और मार–पीट कर मेहनत करवाने के लिए जरूरी होता था। मालिक उन्हे हर प्रकार का दण्ड दे सकता था, बेच सकता था और यहाँ तक कि उनकी जान भी ले सकता था। यह शोषण का एक प्रकार था जिसमे दासो से मजबूरन पैदावार करवायी जाती थी और उस सारी पैदावार का उपभोग बिना कोई काम किए दासमालिक करता था। यही दासप्रथा का वर्ग–विभाजन था।

मिस्र मे इसके अलावा अधिकाश भूमि पर खेती करने वाले सामुदायिक किसान भी थे। दासमालिको ने अपने प्रबन्धकर्ताओ को ताकतवर बना कर उन सामुदायिक किसानो की पैदावार के बडे हिस्से को हथियाना चालू कर रखा था। कहीं–कही इन किसानो को दासो के साथ जोड कर उनसे सरकण्डो और झाड़ियो की कटाई और नहरो तथा बाँधो का निर्माण भी करवाया जाता था। मालिको ने दासो और आदिम किसानो की मेहनत का शोषण करके अपनी हैसियत को इतना बढ़ा लिया था कि वे नयी आबाद की हुई जमीन के सबसे अच्छे टुकड़े अपने लिए रख लेते थे। उसके अलावा किसानो को अपनी

फसल और मवेशियो का एक हिस्सा भी उन्हे देना पडता था। किसान बडी मुश्किल से ही अपने परिवार को चला पाते थे।

मिस्र मे सम्पत्ति और दासो की सख्या बढा कर मालिक ने पराजित किन्तु ताकतवर लोगो की सेना बना ली और चाटुकार बुद्धिजीवियो को ऐसे अधिकारियो के रूप मे नियुक्त कर दिया जो उनकी इच्छाओ के अनुकूल कानून और आचरण सहिता बनाए और उन्हे क्रियान्वित करने का ढॉचा भी तैयार करे।

यह सब होने के परिणामस्वरूप राज्य की उत्पत्ति हुई। जब राज्य की उत्पत्ति हो गई तो दासमालिक जो विजेता सेनापति था, अब राजा बन कर एक और ऊँची सतह पर जा बैठा।

चौथी सहस्राब्दी ई.पू. मे मिस्र मे पहले राज्यो का उदय हुआ। राजा की सत्ता कायम हुई। उसके पास दासो की सेना प्रहरी (पुलिस) जल्लाद और जेले थी। राज्य वह शक्ति थी, जिसकी सहायता से दासस्वामी शोषितो पर अर्थात् दासो और किसानो पर अपना प्रभुत्व बनाए रखते थे।

मिस्र मे ऐसे 40 दासस्वामियो (राजाओ) के छोटे-छोटे राज्य थे जो आपस मे लडते रहते थे। वहॉ के फिराउनो ने एक-एक कर उन छोटे दासस्वामियो पर आक्रमण कर उन्हे पराजित किया और उन दासस्वामियो को मारकर उनके दासो पर कब्जा कर लिया। इससे फिराउनो ने अपनी राज्यसेना का विस्तार करके मिस्र मे राज्यो का एकीकरण कर दिया। मेफिस नगर उसकी राजधानी हुआ। मिस्र का राजा फिराऊन कहलाता था।

राजा नुकीला-ऊँचा मुकुट पहनता था। उसके सिपाहियो द्वारा युद्ध बन्दियो को पशुओ की तरह हॉका जाता था। उसके पास असीम शक्ति थी।

फिराऊन (दासो के मालिक राजा) की वर्ग-चेतना

1 दास और गरीब पशु के समान है उन्हे मार-पीट कर उनसे हर तरह का काम करवाना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यह अधिकार भगवान् ने दिए है हम उसके अवतार है। देवता हमारे साथ हैं। यह सारी जमीन हमारी है सोना-चाँदी हमारे हैं और सारे दास हमारे कैदी हैं। हम उन्हे साँकलो से बाँधे रख कर उनसे काम करवाते हैं।

2 दासो के शरीर और मन पर हमारा अधिकार है। हम चाहे जितना पिटवाएँ या डॉंभे हाथ-पाँव तोड़े भूखो मारे—ये सब हमारे कानूनी हक हैं। हमारे बुद्धिमानो ने ऊपर वाले के आदेशो से हमारे लिए ऐसे न्यायकारी कानून बना दिये हैं।

3 फिराऊन की रग-रग अहकार, आतक, बर्बरता, ऐय्याशी और मक्कारी से ओत-प्रोत थी। उसका लक्ष्य था विद्रोह की आशका का तत्काल दमन और चाटुकार सामन्त को पुरस्कार।

4 उसे आत्मा और प्रेतात्मा पर अटूट विश्वास था। उसमे अटल विश्वास पैदा कर दिया गया था कि तुम्हे पूर्वजन्म के कारण मिले ऐश्वर्यों को भोगने के लिए ही यहाँ भेजा गया है।

5 तुम्हे हक है कि तुम पडोसियो को लूटो उनकी हर चीज को हथिया लो उनकी बस्तियाँ जला दो, उन्हे कत्ल करवा दो उन्हे गुलाम बना कर बाडो मे रखो या उनके साथ चाहे जैसा अत्याचार करो। याद रखो दास और गरीब सबसे खराब होते है वे तुम्हारे साथ विश्वासघात कर सकते है—इसलिए तुम्हारे सबसे बडे दुश्मन है।

6 दासमालिको का बडा मालिक फिराऊन अत्यधिक कामातुर लोभी क्रोधी और रक्त-पिपासु था। वह मरने के बाद के लिए भी अपने शव के साथ सारी सुविधाएँ साथ ले जाने की पूर्व-सामग्री तैयार रखवाता था ताकि उसकी प्रेतात्मा को वे सब उपलब्ध होती रहे।

7 इसीलिए मिस्र के राजा जोसेर और उसके बाद के वशज फिराउनो ने अनेक पिरामिड बनवाए। पत्थरो से निर्मित इन पिरामिडो (समाधियो) मे भरपूर साजो-सामान के साथ फिराउनो को दफनाया जाता था। पिरामिड बनाने म एक लाख दासो को लगाया जाता था और एक पिरामिड मे बीस-पचीस लाख शिलाखण्ड लगाए जाते थे उनमे सबसे छोटे शिलाखण्ड का भार ढाई टन होता था। दासा को मार-मार कर उनसे पत्थरो की ढुलाई-चढाई कराई जाती थी। इससे कुछ दास तो बीच मे ही दम तोड़ देते थे। फिराऊन ख़ुफू के पिरामिड की ऊँचाई 150 मीटर है। मिस्र के ये पिरामिड दुनिया के सात आश्चर्यों मे शामिल हैं। इन पिरामिडो से कुछ दूरी पर पूरी की पूरी चट्टान को तराश कर बनाई गई स्फिक्स' (नरसिंह) की मूर्ति खड़ी की गई है। यह आतकित करने वाला था जिसे आतक का पिता कहा जाता था।

शोषित वर्ग (दास) की वर्ग-चेतना—

1 हीन मानसिकता से ग्रस्त उत्पीड़न-त्रस्त हताश और रोज-ब-रोज यन्त्रवत् काम मे जुते रहने से काम मे रुचिहीनता का रहना

2 ईश्वर द्वारा दिए गए पूर्वजन्म के कर्मों के दण्ड को भोगते रहने की अन्धी धारणा पाले रखना

3 अधिकारी वर्ग से आतकित रहना,

4 पलायन प्रवृत्ति के वशीभूत अधिकारी वर्ग की कभी-कभार की असावधानी का मौका देख कर बन्धन सहित भाग जाना,

5 भगोडो मे विद्रोही भावना का पैदा होना

6 भागे हुए सजग शोषितो मे एकताबद्ध होकर सघर्ष भावना का उद्भव,

7 धीरे-धीरे विद्रोह की चेतना का फैलते जाना,

8 मिस्र मे 1750 ईसा पूर्व मे दासो कर्जदार किसानो व अन्य गरीबो ने मिल कर पहली बार विद्रोह किया। मिस्र के पुराने दस्तावेज के अज्ञातनामा लेखक द्वारा प्रारुपित वृत्तान्त का अश दृष्टव्य है—

लोगो ने ईश्वर द्वारा स्थापित फिराऊन की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया है।

राजधानी देखते ही देखते खाक मे मिल गयी है। गरीबो ने सम्राट् को पकड लिया है।

बडे अधिकारी जान बचा कर भाग रहे है। अन्य अधिकारी मार डाले गये हैं। कर इकट्ठा करने से सम्बन्धित कागजात नष्ट कर दिए गए है।

गरीब लोग बडे-बडे महलो मे घुस रहे हैं।

महीन बन्यिा कपडे पहने लोगो को डण्डो से मारा जा रहा है। ठाट-बाट वाले लोग चिथडो मे घूम रहे है। मालदार कगाल बन गये हैं।

जिसके पास एक जोडी बैल तक न थी वह अब पूरे के पूरे रेवडो का मालिक हो गया है। जो अनाज माँगा करता था अब खुद अनाज दे रहा है। दास खुद दासमालिक बन बैठे है।

मेरे मन को इससे बडी पीडा पहुँची है। ओह ' इस जमाने की विपत्तियो से मैं कितना दुखी हूँ।'

—(स्रोत प्राचीन विश्व इतिहास का परिचय (53-54) —फ्योदोर कोरोव्किन)

दास-विद्रोह को दबाने के लिए चारो तरफ के बचे-खुचे दासमालिक पुन एकत्रित हुए। उन्होने अपने चाटुकार अक्लमन्दो से सलाह लेकर विद्रोह को कुचलने की साजिशे रची। कुछ दलालो को विद्रोही बना कर घुसपैठ की फूट पैदा की कुछ गरीबो को झाँसा पट्टी देकर अपनी ओर मिलाया। और जब

भरोसा हो गया कि विद्रोहियो मे पूरी तरह फूट पड गई है तो राजधानी पर पुन हमला बोल दिया और विद्रोही नेताओ की सरेआम निर्मम हत्या कर दी गई तथा फिराऊन की सत्ता को फिर से स्थापित कर दिया गया। जहाँ-कही भी किसी विद्रोही दास या गरीब के होने की सूचना प्राप्त हुई वहाँ उसे शिकार बना कर कुचल डाला गया। पारलौकिक जीवन मे फिर से अन्धी आस्था पैदा की गई। फिर भी मिस्र मे छोटे-छोटे दास-विद्रोह खडे होते रहे, किन्तु उन्हे बार-बार दबाया जाता रहा। धर्म ने फिराऊनो की सत्ता और दासमालिको के प्रभुत्व को और अधिक मजबूती प्रदान की।

प्राचीन मिस्र मे उद्योग-धन्धो, गणित खगोल विज्ञान लेखन कला का आरम्भ शिक्षा साहित्य और कला आदि का जो भी विकास हुआ—अधिकतर सत्तापक्ष ने उसका उपयोग अपने हित मे ही किया।

मैसोपोटामिया—पश्चिमी एशिया मे दजला और फरात नदियो के बीच मे निचले भागो मे स्थित प्रदेश को प्राचीन यूनानी मैसोपोटामिया अर्थात् नदियो के बीच का प्रदेश (दोआबा) कहा करते थे। यहाँ की मिट्टी उपजाऊ थी अत यहाँ खेती करने का विकास आसानी से होने लगा। सातवी-छठी सहस्राब्दी ई पू मे यहाँ के लोग कुदाली से खेती करने तथा मवेशियो का पालन करने लगे थे। दल-दल मे उगने वाले सरकण्डो और मिट्टी से वे आवासीय झोपडियाँ बना लिया करते थे।

यद्यपि नदियो की बाढ जब झोपडियो को बहा ले जाती थी और अनेक पशु भी मर जाते थे तब लोगो का जीवन अनेक मुसीबतो मे फँस जाता था। कभी हिसक जानवर भी उनके मवेशियो को मार कर खा जाते थे। सूअर उनकी फसलो को बर्बाद कर देते थे। किन्तु वे कठिनाइयो के विरुद्ध सघर्ष करने के आदी हो चुके थे। आस-पास के जनसमुदायो से मिल कर वे दल-दलो को सुखाते रहते और कुछ अरसे बाद उन्होने जमीन की सिचाई के लिए नहरे खोदना चालू कर दिया। वे बाँध बना कर अपनी और अपने बगीचो की बाढ से रक्षा कर लेते थे।

जब उन्होने हल का आविष्कार कर लिया तो वे अपनी उपज बढाने मे सफल हो गए। अब वे भारी चिकनी मिट्टी को भी जोत सकते थे। भीषण गर्मी मे भी वे नहरो के पानी से अपने खेत सीच सकते थे। इस तरह उन्होने अपनी लगातार मेहनत से दलदल और सूखे पर काबू पा लिया। दक्षिणी मैसोपोटामिया के सारे मैदानो मे उन्होने नहरो का जाल-सा बिछा दिया। अब वे गेहूँ और जौ उगाने लगे। बस्तियो के आस-पास खजूर के पेड़ो के बगीचे लहलहाने लगे।

खजूर से आग और गुड तैयार करने लगे और गुठलियो को ईधन के रूप मे काम मे लेने लगे। पेड की छाल के रेशो से रस्सियाँ बट ली जाती थी जो पत्तो से टोकरियाँ बुनने के काम मे आती थी। चरागाहो मे लम्बी और घुँघराली ऊन वाली भेडो और गायो के रेवड चरते थे।

नगर के शिल्पी अपने व्यापार को बढाने मे लगे हुए थे। वे आस–पास के निवासियो से धातुओ लकडी और पत्थर का विनिमय–वाणिज्य करने लगे थे बदले मे अनाज ऊन और खजूर देते थे। चौथी सहस्राब्दी ई पू मे ही उन्होने तॉबे सोने और फिर कॉसे से विभिन्न वस्तुएँ बनाना सीख लिया था। उनके द्वारा निर्मित ऊनी वस्त्रो की मशहूरी ने उनकी सम्पन्नता को और बढा दिया। इसके अलावा वे मिट्टी के घडे सन्दूक और नालियाँ भी बनाया करते थे। मिट्टी की ईटो से पक्के मकानो का बनाना आसान हो गया था।

इस तरह पैदावार और विनिमय से मैसोपोटामिया का एक हिस्सा दूसरे की अपेक्षा अधिक सम्पन्न हो गया। नतीजतन–इससे शोषण की स्थिति पैदा हो गई। वर्ग–विषमता बढने लगी।

वर्गों की उत्पत्ति—सम्पन्न लोगो और धर्माधिकारियो ने जमीन के बडे–बडे हिस्सो पर कब्जा कर लिया और नौकरो के रूप मे दासो को रखना शुरू कर दिया। मुद्रा के रूप मे चॉदी को काम मे लिया जाने लगा। कई–कई कबीलो पर आक्रमण करके उन्होने दासो की एक बडी सख्या एकत्रित कर ली। अब दासो को खेतो बगीचो शिल्प–शालाओ मे मजबूर करके उनसे काम लेना उनके अधिकार क्षेत्र मे आ गया। दास अपने मालिक का चेहरा नहीं देख सकते थे, यह उनके लिए वर्जित था अत दासो को आँख न उठाने वाला कहा जाता था।

दूसरी ओर अनेक शिल्पकार और किसान धनी लोगो के कर्ज से दबे—दबाए जा रहे थे। उन्हे कर्ज पर भारी ब्याज चुकाना पडता था। अत वे जीवन–भर कर्जदार बने रहते थे। इनमे से कई सम्पन्न लोगो का दास बनना स्वीकार कर लिया करते थे। इस तरीके से मैसोपोटामिया दो वर्गों वाला प्रदेश बन गया।

इसी दौरान दक्षिणी मैसोपोटामिया मे वर्गभेद के साथ राज्यो की स्थापना भी शुरू हो गई। मैसोपोटामिया का हर नगर एक अलग राज्य बन गया। सेना अधिकारियो पहरेदारो की मदद से नगरराज्य दासो और गरीबो का बेरहमी से दमन करने लगे। इन्ही नगरराज्यो मे एक बेबीलोन या बाबुल नाम का नगरराज्य था। यह दजला नदी के तट पर स्थित था। उसकी भौगोलिक स्थिति

बहुत अच्छी थी। नदी मार्गो से व्यापारी लोग नावो और बजरो पर तरह-तरह का माल यहाँ लाते थे, जिनकी स्थानीय लोगो को जरूरत होती थी। वे उनका दक्षिणी मैसोपोटामिया मे उत्पादित मालो के साथ विनिमय करते थे। मैसोपोटामिया के मुख्य स्थल मार्ग भी बेबीलोन से होकर गुजरते थे। उन पर मालो से लदे गधो के कारवाँ आते-जाते रहते थे।

बेबीलोन मैसोपोटामिया का सबसे बडा व्यापारिक नगर और एक शक्तिशाली साम्राज्य की राजधानी बन गया। हम्मूराबी बेबीलोन का शासक बना। बेबीलोन की सम्पदा हथिया कर वहाँ उसने एक बडी सेना खडी कर ली। मैसोपोटामिया के अन्य नगरराज्यो के शासको के आपसी झगडो का फायदा उठा कर उसने कुछ कमजोर शासको को अपने साथ ले लिया जिससे उसकी खुद की ताकत भी बढ गई और राज्य का दायरा भी बढ गया। फिर कुछ शासको को मित्रता का झाँसा देकर उन पर हमला बोल दिया और उन्हे बन्दी बना लिया तथा उनके पराजित प्रहरियो को दास बना लिया। इस साम, दाम, दण्ड भेद की नीति को अपनाकर उसने बेबीलोन को एक साम्राज्य मे बदल दिया और स्वय बहुत-से नगर-शासको को अपने अधिकार क्षेत्र मे लेकर पराजित शासको का नया शासक बन बैठा।

हम्मूराबी ने बेबीलोन मे 42 साल तक शासन किया। अपने उस शासन-काल मे उसने कानूनी नियमावली बनाई जिसका पालन करना साम्राज्य की सारी जनता के लिए आवश्यक था। इस कानूनी नियमावली अर्थात् विधि-विधान के अनुसार नगरवासियो के आपसी झगडो का निबटारा किया जाता था। जो राजाज्ञा का उल्लघन करता उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। राजा की इस विधि-नियमावली मे बताया गया था कि किस प्रकार के अपराध के लिए किस तरह का दण्ड दिया जायेगा। बीसवी सदी के आरम्भ मे पुरातत्त्ववेत्ताओ को काले पत्थर का एक ढाई मीटर ऊँचा स्तम्भ मिला जिसमे सबसे ऊपर हम्मूराबी का चित्र बना था और उसके नीचे यह विधि-सहिता खुदी हुई थी।

यह विधि-सहिता ही हम्मूराबी की **वर्ग-चेतना** को प्रतिबिम्बित करती है कि दासो का स्वामीवर्ग दासो और गरीबो पर किस प्रकार अपना प्रभुत्व बनाये रखता है। पुरातत्त्व विभाग मे सुरक्षित इस स्तम्भ पर खुदी हम्मूराबी की विधि-सहिता का उल्लेख इस प्रकार है—

> मैं हम्मूराबी देवताओ के द्वारा नियुक्त शासक सभी राजाओ मे प्रथम और फरात के सभी ग्राम-नगरो का विजेता हूँ। मैंने समस्त देश को सत्य और न्याय की शिक्षा दी है और लोगों को समृद्धि प्रदान की है।

आज से—

जो मन्दिर या राजा की सम्पत्ति चुरायेगा उसे प्राणदण्ड मिलेगा और चुरायी हुई वस्तु रखेगा वह भी प्राणदण्ड का भागी होगा।

जो आज से दास या दासी चुरायेगा उसे प्राणदण्ड मिलेगा।

जो भागे हुए दास को शरण देगा, उसे प्राणदण्ड मिलेगा।

जो दास का निशान मिटाएगा उसकी अँगुलियॉ काट दी जायेगी।

जो पराये दास की हत्या करेगा, उसे बदले मे दास देना होगा।

जो पराया बैल मारेगा, उसे बदले मे बैल देना होगा।

जो कर्जदार है उसकी पत्नी पुत्र और पुत्री को तीन वर्ष तक दास बन कर रहना होगा।

जो बराबर के किसी व्यक्ति को थप्पड मारेगा उसे जुर्माना भरना होगा।

जो अपने से उच्च वर्ग के किसी व्यक्ति (अर्थात् सम्भ्रान्त पुरोहित आदि) को थप्पड मारेगा उसे बैल के चमड़े से बने 60 कोडे लगाए जायेगे।

विधि–सहिता के अन्त मे कहा गया था— मैं हम्मूराबी न्यायप्रिय राजा हूँ और ये विधान मुझे सूर्यदेव शम्स ने प्रदान किए हैं। मेरे शब्द उदात्त और मेरे कार्य अनुपम हैं।

(दास के शरीर पर ठप्पा (निशान) इसलिए लगाया जाता था ताकि मालूम हो सके कि उसका मालिक कौन है।)

—(विश्व इतिहास का परिचय' (पृष्ठ 79) से
अनुवाद बुद्धिप्रसाद भट्ट)

हम्मूराबी की वर्ग–चेतना के केन्द्र मे जनसाधारण के धार्मिक विश्वासो का अपने हित मे उपयोग करना उच्च वर्ग को सरक्षण देना दासो और गरीबो का दमन करना उनसे जबरन खेती करवाना छोटे किसानो से उपज का अधिक हिस्सा वसूलना और अपने राज्य का विस्तार करना मुख्य रूप से समाहित थे। इस विधि की आड मे हम्मूराबी और उसके चाटुकार अधिकारी और पुरोहित भयकर आर्थिक शोषण शारीरिक उत्पीड़न बलात्कार और आतकपूर्ण कुण्ठा का माहौल बनाए रखते थे ताकि कोई भी उसका सामना करने का साहस न कर सके।

हम्मूराबी के शासनकाल मे पर्वतीयो मे विद्रोह की चिगारी सुलगने लगी थी जिसने आगे चल कर हम्मूराबी के मरने के बाद बेबीलोन पर कब्जा कर लिया।

इसी दौर मे पश्चिमी एशिया मे शक्ति-सन्तुलन बिगडता चला गया। कभी किसी दासस्वामी को विजय प्राप्त हुई तो कभी अन्य को। आठवीं-सातवी शताब्दी ईसापूर्व मे पारसीक राजाओ ने बडे क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर ली। इसमे बेबीलोन के धार्मिक पुरोहितो की गद्दारी ने उनकी काफी मदद की। असीरिया या असुर यहाँ का शक्तिशाली राज्य था। पारसीको के साथ मिस्र के भाडे के सैनिक मिले जिससे पारसीको ने मिस्र पर भी अधिकार कर लिया।

दासो और गरीबो मे हीनता और हताशा की भावना के होते हुए भी उनमे विद्रोह की आग सुलगती रहती थी। यह सघर्षात्मक रूप धारण कर यद्यपि सत्ताधारी शासको के परिवर्तनो मे सहायक की भूमिका अथवा अहम भूमिका अदा करते थे किन्तु बिना किसी विकल्प के किसी अन्य दासस्वामी सम्राट को गद्दी सौपने मे सहायक बन जाया करते थे।

पश्चिमी एशिया मे जिस सस्कृति लेखन कला, ज्ञान-विज्ञान और कला आदि का जो विकास हुआ वह मिस्री सस्कृति के समकक्ष और वैसी ही पुरातन सस्कृति थी। कीलाक्षरी लिपि मे प्रयुक्त प्रतीको का विकास—पक्षी हल पैर फिनिशियाई वर्णमाला के रूप मे देखा जा सकता है। इसमे भी स्वतन्त्र प्रतिभाओ गरीब कलासाधको किसानो और भागे हुए विद्रोही दासो की सक्रियता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी।

प्राचीन भारत—भारत एशिया महाद्वीप के दक्षिण मे स्थित एक विशाल देश है। विश्व की सबसे ऊँची हिमालय पर्वतमाला जिसकी चोटियाँ सदा बर्फ से ढँकी रहती हैं—वे इसे अन्य देशो से अलग करती हैं। इन पर्वतो के उत्तर-पश्चिम मे कुछ महत्त्वपूर्ण दर्रे हैं। पुराने जमाने मे ये दर्रे ही भारत को बाहरी देशो से जोड़ते थे। लगभग सारे भारत की भूमि पठारी है। यहाँ ताँबा और लोहा प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। इसके पश्चिम मे सिन्धु (सिन्ध) और पूर्व मे गगा नदी बहती हैं जो हिमालय से निकलती हैं।

तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व मे भारत की सिन्धु घाटी सभ्यता एक नगरीय सभ्यता के रूप मे विकसित हो चुकी थी। दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. मे यह नगरीय सभ्यता उजड़ गयी जिसका रहस्य अभी तक बना हुआ है। इस समय की लिपि इतनी जटिल है कि इसे पढा नहीं जा सका अत इस सभ्यता के बारे मे विस्तार से कुछ नहीं कहा जा सका। यह निश्चय है कि भारत मे आरम्भिक मानव का विकासक्रम बहुत पहले से आरम्भ हो गया था चाहे वह खाद्यसग्रह

की अवस्था हो सामुदायिकता की कबीलो की दासप्रथा की और दास-स्वामियो के बडे दासस्वामी—राजा की। इसी विकासक्रम मे सिन्धु घाटी सभ्यता एक विकसित नगरीय सभ्यता के रूप मे अपनी पहचान बना चुकी थी। यहाँ पशुपालन और कृषिकार्य तो थे ही अपनी नगर-निर्माण की वास्तु अनेक प्रकार के शिल्प विविध मुहरे बर्तन सोने-चाँदी के आभूषण व बहुत-सी विनिमय वस्तुओ का उत्पादन होता था।

आर्यो के आगमन के पश्चात् सिन्धु सभ्यता तो उजड गई या विध्वस कर दी गई। उसके वर्ग-विभाजन को ऋग्वेद के उत्तरकाल मे वर्ण-विभाजन करके उसे और जटिल और क्रूरकर्मा बना दिया। वर्ण-विभाजन वर्ग-विभाजन का वह चरम वैषम्य था जो अन्य किसी देश मे नही था। उस समय तक न तो ईसाई फिरकापरस्ती थी और न ही इस्लामियत। इण्डो-आर्यन बोली या भाषा ही वस्तु-विनिमय का आधार था।

वर्ण-व्यवस्था एक तरह से आर्यो द्वारा किया गया वर्ग-व्यवस्था का पुनर्विभाजन था—प्रथम चरण मे कर्मानुसार और उसके अगले चरण मे जन्मानुसार या वशपरम्परानुसार। वर्णभेद मे शोषक शोषित के दो वर्गों को चार वर्णो मे विभाजित किया गया। यह विभाजन करवाया गया ईश्वर के द्वारा—सत्ता-पक्ष मे अर्थात् क्षत्रिय (प्रशासकीय तन्त्र का स्वामी—दासो किसानो और अन्य कर्मचारियो का अधिष्ठाता) और ब्राह्मण (नीतिनिर्माता धर्माधिकारी राजभक्त आदि) सत्तावर्ग के पक्ष मे। वर्णो मे तीसरा वर्ण वैश्य (किसान) था और चौथा शूद्र (सेवा कार्य)। कालान्तर मे वैश्य ने अपनी हैसियत व्यापारी की बनाली और वह भी ऊपर के दोनो वर्णो के निकटतर का सहयोगी वर्ण बन गया और कुछ सम्पत्ति का अधिकार का मालिक भी। किन्तु शूद्र को एक दर्जा और नीचे कर दिया गया जिसे पाँचवाँ वर्ण यानी अछूत अधिकारहीन घृणित और दलित श्रेणी मे डाल दिया गया। दलितो के काम होते थे—मल-मूत्र को ढोना मरे हुए जानवरो की खाल निकालना और बस्ती से दूर रहना।

युद्धबन्दियो को दास बना लिया गया था और उन्हे म्लेच्छ' दस्यु' (डाकू) दास आदि नामो से पुकारा जाता था।

सत्तापक्ष के ब्राह्मणो के द्वारा निर्धारित धर्माचरणो या नैतिकताओ के कुछ बिन्दु इस प्रकार थे—

ब्राह्मण ईश्वर के मुख-मस्तिष्क से पैदा हुए है क्षत्रिय भुजाओ से वैश्य पेट से और शूद्र जघा से (और अछूत पैर से)। -

ब्राह्मण परमपूज्य है, उसको हर इच्छा पूरी करने का अधिकार है—कामेच्छा तक।

क्षत्रिय ब्राह्मण के बिना और ब्राह्मण क्षत्रिय के बिना अपना स्थान निर्धारित नही कर सकते। दोनो एक-दूसरे के सपूरक हैं।

ईश्वर ने क्षत्रियो को जनता पर राज करने और ब्राह्मणो को धर्माचरण करवाने हेतु पैदा किया है।

वैश्य को कृषि-कार्य करके राजा को कर अदा करना होगा।

शूद्रो के लिए एक ही काम है—उच्च वर्णों की सेवा करना।

जो शूद्र उच्च वर्णों को अपशब्द कहे, उसकी जीभ दहकती सलाख से दाग देनी चाहिए और जो शूद्र ब्राह्मण से बहस करे, उसके मुख व कान मे खौलता तेल भर देना चाहिए।

जो शूद्र ब्राह्मण पर हाथ उठाये उसका हाथ काट डालना चाहिए और जो ब्राह्मण को लात मारे उसका पैर काट डालना चाहिए।

ब्राह्मण को प्राणदण्ड नही दिया जा सकता। इसके बजाय उसे सिर्फ सिर मूँड कर छोड दिया जाना चाहिए।

मनुस्मृति व अन्य स्मृति-ग्रन्थो मे शूद्रो की मामूली-सी भूल-चूको के लिए विस्तार से दण्ड-प्रकारो का वर्णन है। इसके अलावा ब्राह्मण ग्रन्थो तथा स्मृतियो और पुराणो मे पॉचवे वर्ण अछूत' या दलित को और अधिक कठोर दण्ड देने का प्रावधान रखा गया जैसे दलित न तो किसी उच्च वर्ण को देख सकता है और न ही उसके सामने से गुजर सकता है।

इस तरह के क्रूर दण्डविधान के बावजूद ईश्वरेच्छावाद या ईश्वर-आदेशवाद अवतारवाद पुनर्जन्म भाग्यफल स्वर्ग-नरक जैसी अवधारणाएँ परिकल्पित कर वर्ण-विभाजन को इतना रूढ और दीर्घजीवी बना दिया कि हजारो वर्षों से जिसके भयकरतम दुष्परिणाम शूद्रो और दलितो को अब तक भोगने पड़ रहे हैं।

यह है प्राचीन भारत के शोषक वर्ग की मानसिकता अथवा वर्णभेद के चरित्र एव आचरण की चेतना। यहाँ कहा गया है कि इस सारे ब्रह्माण्ड' को ब्रह्मा ने बनाया है अत ब्रह्मा को अर्थात् स्रष्टा (ईश्वर) को विश्व-मन्दिर मे मूर्तिमान या प्रतिष्ठित करने का काम पुरोहित वर्ग ने किया अत वह ब्रह्मा (राजा-क्षत्रिय) का प्रतिष्ठापक पुरोहित ब्राह्मण' कहलाया। ब्रह्माण्ड , ब्रह्मा'

और ब्राह्मण' की अवधारणा को 'सनातन' अर्थात् आदिकाल से अनवरत रूप से प्रचलित धर्म अथवा कर्तव्य मान लिया गया। सारे ब्राह्मण धर्म को अवतारवाद मे ढाल कर 'राजा (दासस्वामियो मे बडा दासस्वामी) को ईश्वर के लौकिक रूप (अवतार के रूप) मे स्वीकार कर लिया गया। तदनुसार ब्रह्मा को प्रथम स्रष्टा कह कर तटस्थ कर दिया गया और सृष्टि के सरक्षक विष्णु को भगवान के पृथ्वी की रक्षार्थ अवतार लेने का दायित्व ग्रहण करना पडा। इसके लिए उन्होने चौबीस अवतार ग्रहण किए इनमे राम कृष्ण जैसे महाकाव्यो (रामायण और महाभारत) के महानायक भी प्रमुख स्थान धारण किए हुए थे।

इन्ही ईश्वर के अवतारो देवी-देवताओ को लेकर हजारो मन्दिर खडे किए गए। इनमे शूद्रो और अछूतो का प्रवेश निषिद्ध था। इनमे अवतारो और देवी-देवताओ की दैनिक पूजा-विधियाँ चालू कर दी गईं। भगवान को जगाना मूर्ति को नहाना कलेवा करवाना प्रात कालीन आरती उतारना भोग लगाना आराम करवाना तीसरे पहर फिर जगाना झूला झुलाना दूसरी आरती करना सान्ध्य-वन्दना भजन-कीर्तन रात्रिभोज रात को 10 या कही-कही ग्यारह बजे भगवान द्वारा सपत्नीक रात्रि-विश्राम—भक्तो द्वारा 'लोरी' गा कर नीद को आमन्त्रित करना।

इस प्रतीकात्मक पूजा-पद्धति ने अन्धी आस्थाओ की जडो को इतनी गहराई तक पहुँचा दिया कि धर्म राजभक्ति का अनन्य सेवक हो गया और ब्राह्मण-पुरोहित-पुजारी राजशाही—दासस्वामी भक्ति के अनन्य प्रहरी।

प्राचीन भारत मे शोषित वर्ग—(1) शूद्र—सम्पत्तिहीन श्रमिक—चर्मकार बुनकर धोबी नाई चिकित्सक आदि थे जिन्हे टैक्स की जगह दासस्वामी राजा और राजपरिवार की जबरन बेगार करनी पडती थी। (2) दलित—जिन्हे मल-मूत्र ढोना होता था, रास्तो की सफाई करनी होती थी। वे माँगी हुई बासी रोटी या जूठन पर जीते थे। (3) नारी—जो अपहरण, बलात्कार दहेज बाजारू सती और न जाने कितनी यन्त्रणाओ की शिकार थी।

शोषित वर्ग की चेतना—(1) शूद्र—सपरिवार जबरन बेगार से उत्पन्न निराशा से तनावग्रस्त रहना घुटन के साथ आक्रोश का सुलगते रहना उत्साहहीनता से दिन-रात कमरतोड़ मेहनत करना गालियाँ और मार-पीट तक सहते जाना तथा यदा-कदा गुस्से को न दबा सकने के कारण उच्च वर्ग का सामना करना व्यक्तिश झगडना और जन्म-भर सजा भुगतना उत्पीडित होना अथवा मारा जाना। पत्नी या बेटी को कर्ज के बदले मे सौंपना बलात्कार

या अपहरण करने पर सामना करने पर जला दिया जाना या मामूली-सी उपेक्षा करने पर कातिलो के द्वारा बेरहमी से पिटते जाना।

शूद्रो ने कई बार सघर्ष भी किए किन्तु उन्हे क्रूरता के साथ कुचल दिया गया। शूद्रो का जीवन अपना होते हुए भी पराया था नीरसता की काली छाया का आतक उन्हे आधी उम्र मे तोड फेकता था। किन्तु बावजूद इसके, प्राचीन भारत मे शूद्रो के असफल किन्तु सुदृढ सघर्षों के उदाहरण भी मिलते हैं। स्वतन्त्रता के बाद आज वे सघर्ष की नई भूमिका मे हैं।

(2) दलित—कई पुराविद् इतिहासकारो ने इसे पाँचवाँ वर्ण कहा है जिसका काम मल-मूत्र के मलबे को सिर पर रख कर ढोना और मार्गो पर झाडू लगाते हुए धूल फॉकते रहना। वे अछूत थे। वे आँख उठा कर किसी उच्च वर्ग को नही देख सकते थे। उनके लिए जीना मौत से भी ज्यादा भयकर था। मामूली बात थी—हाथ पैर तुडवाना जीभ खिचवाना जलती सलाखो से डॉभ देना भट्ठी मे झोक देना चमडे के कोडे से पिटवाना अपहरण, बलात्कार साँकलो से बाँधे रखना आदि उत्पीड़न रोजमर्रा की घटनाओ मे शुमार थे। न उनका कोई मददगार था न सहानुभूत।

दुनिया की किसी भाषा के किसी विश्वकोश मे ऐसा कोई शब्दगुच्छ नहीं जो दलित के दीर्घकाल से किए जा रहे उत्पीडन का वस्तुगत वर्णन कर सके।

मध्यकाल मे भक्तिकाल भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के मध्य और उत्तर भाग मे दलित-चेतना ने ऑख खोलनी चालू की। महात्मा गाँधी अम्बेडकर ज्योति बा-फुले और वामपन्थी नेताओ ने दलित-चेतना का विकास किया। किन्तु आजादी के बाद के इस युग मे दलितो के सघर्ष की सबसे अहम भूमिका अपना जलवा दिखा रही हैं। आज का दलित साहित्य उसकी मुखर अभिव्यक्ति है।

(3) नारी—जो मानव को उत्पादित करने वाली कभी मातृप्रधान युग की अधिष्ठात्री थी पुरुषधान युग मे वह दासी देवदासी स्वर्ग की वेश्या (अप्सरा) भूवेश्या (बाजारू औरत) भोगकर कत्ल कर दी जाने वाली नाचीज हरम की कैदी परदे की कठपुतली और असह्य उत्पीडनो की पात्र है। इसीलिए उसे शोषण की प्रथम शिकार—निम्नतम श्रेणी की सर्वहारा कहा गया। उससे उत्पादन-भार वहन करवाया जाता रहा—और उस पर रोटी-कपड़े देने भर का एहसान फरमाया गया। हद थी ऐतिहासिक बेशर्मी की। पाँच पतियो की अकेली नारी-पत्नी—वह भी सरे-आम निर्वस्त्र।

लेकिन नारी ने प्रत्येक स्वतन्त्रता सग्राम मे भाग लिया सघर्ष भी किया उपनिषद् काल मे दार्शनिक तौर पर वह वेश्या होते हुए भी लडी (अजीजन बाई के रूप) मे, मीरा बन कर विद्रोह किया, रानी लक्ष्मीबाई ने तलवार उठाई और अग्रेजो के खिलाफ अनेक ने बलिदान दिए। अब तो उसकी चेतना बराबरी के स्तर पर आकर पुरुष-प्रधानता पर आघात-दर-आघात करने लगी है। उसने अपनी चेतना का साहित्य रच डाला है।

प्राचीन चीन—चीन का पूर्व मे सागर से सटा भाग मैदानी है और शेष भाग पठारी और पहाडी है। सागर तट से लगे इलाको मे खूब वर्षा होती है किन्तु ज्यो-ज्यो हम पश्चिम की ओर बढते हैं, वर्षा का अनुपात कम होता जाता है। मैदानी भाग मे चीन की दो बडी नदियाँ बहती हैं—ह्वाग्हो और याङ्त्सी। ह्वाग्हो को पीली नदी भी कहते हैं क्योकि इसकी घाटी महीन पीली बालू जैसी लोएस मिट्टी से बनी है। यहाँ कुदाल और हल से आसानी से खेती की जा सकती है और अगर भूमि को पर्याप्त नमी मिले तो बहुत अच्छी पैदावार होती है।

बरसात म बाढ आने से ह्वाग्हो का पाट दसियो और कही तो सैकडो किलोमीटर चौडा हो जाता है और पानी लोएस को बहा ले जाता है। इस नदी ने अनेक बार अपनी धारा को बदला है। जब-जब ऐसा हुआ पूरे के पूरे गाँव और बस्तियाँ धाराप्रवाह मे समा गए। इस वजह से चीनवासी ह्वाग्हो को भटकती नदी चीन का सकट' अथवा सहस्रो अभिशापो की नदी' कहते थे। याङ्त्सी नदी के तट की भूमि भी बहुत उपजाऊ है।

चीन मे वर्गभेद की उत्पत्ति—ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी मे ह्वाग्हो की घाटी के बीच के भाग मे कृषि का पर्याप्त विकास हो चुका था। किसान ज्वार-बाजरा गेहूँ, धान और साग-सब्जियाँ उगाया करते थे और मवेशी पालते थे। उन्होने शहतूत के कीडे पालना और सुन्दर रेशमी कपड़े बनाना भी सीख लिया था। वे सोने के आभूषण लडाई के हथियार पत्थरो और काँसे के बर्तन भी बनाने लगे थे। इस समय नदी की घाटी मे कबीलाई लडाइयो के फलस्वरूप दासप्रथा का आरम्भ हुआ और चीन के पहले दासप्रथात्मक राज्य का उदय हुआ। साथ ही सूखा और बाढ के भय से आतुर लोग वायु, वर्षा और नदियो मे अदृष्ट शक्ति के अस्तित्व को अगीकृत करने लगे। प्रकृति के इन मूर्तिमान देवताओ मे उनकी दृढ आस्था का सचार हो गया था अत वे उनके तुष्टीकरण के लिए दासो को जिन्दा जला कर वर्षा का आह्वान करते थे। चीन की कड़ी मेहनत से की गई प्रचुर पैदावार का शोषण करने वाले दासस्वामियो ने राज्य का विस्तार करके बडे-बड़े नगरो का निर्माण करवा दिया।

इस तरह चीन मे अनेक नगरराज्यो का जन्म हो गया। इनमे आपसी युद्धो का भी दौर बढ़ने लगा। तीसरी शताब्दी ई.पू. मे 'चिन' राज्य सब राज्यों में सबसे शक्तिशाली राज्य के रूप मे प्रकट हुआ। चिन' के राजा ने साम दाम दण्ड भेद की नीति अपनाई और दूसरे कई दासस्वामियो की परस्पर की लड़ाइयो का लाभ उठा कर एक के बाद एक करके उनमे से कइयो को अपने कब्जे मे कर लिया। इस प्रकार ईसा पूर्व 221 मे उसने चिन शिह हाग्ती' की उपाधि धारण कर ली जिसका अर्थ था— प्रथम चिन सम्राट्'।

चिन शिह हाग्ती' ने उत्तर की ओर से खानाबदोश हूण कबीलो के आक्रमणो से अपने राज्य की सुरक्षा हेतु एक विशाल दीवार का निर्माण शुरू किया। इस चीन की बड़ी दीवार को बनाने के काम पर उसने बहुत बड़ी सख्या मे दासो किसानो सैनिको और कैदियो की जबरन मेहनत का उपयोग किया। 4000 किलोमीटर लम्बी दीवार की चौड़ाई इतनी रखी गई थी कि उस पर एक साथ पाँच घुड़सवार दौड़ सके। पीढी-दर-पीढ़ी चीन की बड़ी दीवार' के निर्माण और रुक-रुक कर उसकी मरम्मत का काम लगभग डेढ हजार साल तक चलता रहा। दीवार मे बीच-बीच मे बुर्ज भी बनाये गये। यह दीवार दुनिया के आश्चर्यों मे से एक है।

शोषक वर्ग की चेतना—दासस्वामी और दासस्वामियो के अधीनस्थ अनेक दासप्रथात्मक क्षेत्रा को साम, दाम दण्ड भेद छल व कपट से एकीकृत करने वाला एक बड़े राज्यक्षेत्र का मालिक—राजा या सम्राट् स्वय कोई काम नही करता था। वह जनसाधारण को विज्ञापित करवाता था कि उसे स्वय ईश्वर ने अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा है कि मैं उसके द्वारा प्रदत्त अधिकारो क अनुसार ईश्वरीय आदेशो का पालन करवाऊँ।

मुझे दासो और गरीबो से खेतो मे कृषिकार्य तथा अन्य सभी प्रकार के कामो को करवाने और पैदावार को वितरित करवाने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है इसके लिए मैंने अधिकारियो को जो हिदायते दी है उनका पालन करना हरेक के लिए जरूरी है। इसमे जो कोई आना-कानी करेगा उसे राजदण्ड दिया जायेगा। राजदण्ड के मुताबिक अनुशासन का उल्लघन करने पर अग-भग मार-पीट कैद से लेकर प्राणदण्ड तक दिया जायगा।

मैं आकाश पुत्र (ईश्वर का दूत) प्रजापालक सत्यप्रिय कृपालु और न्यायकारी शासक हूँ। मेरे अधिकारी मेरे आदेशो के प्रति ईमानदार हैं। इसलिए किसी के लिए शिकायत करने की कोई गुजाइश नही है। फिर भी मेरे खुफिया

तन्त्र से किसी षड्यन्त्र की सूचना मिली तो ऐसा करने वालो को अपनी जिन्दगी से हाथ धोना पडेगा। यह मेरे दण्ड-विधान का नियम है।

मेरे लिए सब एकसमान हैं किन्तु सबकी किस्मत अलग-अलग है। यह किस्मत आकाश (ईश्वर) के लेखाकार के लेख के अनुसार निश्चित की गई है मैं उसकी किस्मत के हिसाब के मुताबिक ही चुकारा करता हूँ—सजा और उपहार उसी के आधार पर तय करता हूँ।

मेरे भरे गोदामो तथा शस्त्रागारो मेरे आरामगाहो और प्रहरियो मेरे वाहनो तथा मालवाहको एव मेरे अधिकार की किसी भी सामग्री पर कोई दखलन्दाजी करने की कोशिश करेगा तो उसे उबलते तेल की कढाई मे फेक दिया जायेगा अथवा सरेआम कत्ल कर दिया जायेगा।

मुझे और मेरे द्वारा आदेशित मेरे अधिकारी को उस आकाशीय मालिक (ईश्वर) से यह हक हासिल है कि मैं अपने अधिकार मे पूर्ण शान्ति और सन्तोष को कायम रखूँ और कही किसी प्रकार के असन्तोष या विद्रोह को न पनपने दूँ।

आकाशस्वामी (ईश्वर) का मैं उसका प्रतिरूप प्रतिनिधि अपने अधीनस्थ छुटभय्यो, दासो किसानो कामगारो लेखाकारो बुनकरो सैनिको दूकानदारो, छोटे-से-छोटे और बडे से बडे अधिकारियो, शिल्पकारो तथा औरतो और इस बुर्जियो वाले परकोटे मे बसने वाले सभी नर-नारियो को सम्बोधित करते हुए घोषणा करता हूँ कि मैं सर्वशक्तिसम्पन्न सर्वोपरि राज्य प्रभु हूँ। मेरी न्यायप्रणाली को चुनौती देने वाला कोई नही। सब मेरी कृपा के आकाक्षी है। मैंने अपनी ताकत से अपने हरेक दुश्मन को कुचल दिया है और फिर भी अगर कोई मेरा सामना करने की हिमाकत करेगा, तो मैं उसे और उसके सारे खानदान को मिट्टी मे मिला दूँगा। मैं यह घोषणा इसलिए कर रहा हूँ कि इसके मर्म को अच्छी तरह समझ लिया जाय ताकि मेरे किसी आदेश का अक्षरश पालन करने मे किसी के द्वारा किसी प्रकार की भूल या गलती न की जाय। मेरी न्यायप्रियता पर अटूट विश्वास रखना हरेक का कर्तव्य है। सभी को यह याद रखना चाहिए कि ऊपर वाला हमेशा पूर्वजन्म के किए हुए कर्मों के अनुसार इस जन्म के भाग्य का निर्धारण करता है। अगर आज आप ईमानदारी और सन्तोष के साथ काम करोगे तो इसके अगले जन्म मे आपको अपना कर्मफल अवश्य मिल जायेगा। आकाश वाला सबका भला करे।

शोषित वर्ग का सोच—हानवश के राजाओ ने अपनी राज्य-सीमाओ का विस्तार करके मध्य एशिया के समृद्ध इलाको को हथिया लिया। इन लम्बी

लड़ाइयो के फलस्वरूप उन्हे अगणित पराजित हूण दासो को प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त हो गई। इन दासो से जबरन पूर्व से पश्चिम 'रेशमी महापथ' का निर्माण करवाया गया। अब दासस्वामी और अधिक खुशहाल हो गए और दासो और कृषि-मजदूरो का क्रूरता के साथ शोषण करने लगे। तीस हजार दासो को सूअरो और कुत्तो जैसा खाना देकर उनसे कमरतोड़ मेहनत करवायी जाती थी। दो लाख कृषिकारो को कर्ज और लगान न चुका पाने के कारण दास बना दिया गया था। उनकी औरतो को दासियाँ बना कर दास-स्वामी उन्हे अपनी कामवासना का शिकार बना लेते थे।

सैकड़ो सालो तक दास भयकरतम क्रूरताओ को झेलते रहे। वे शारीरिक और मानसिक रूप से क्षत-विक्षत होते रहे। हताशाओ का घोर अँधेरा ही उनकी जिन्दगी बन गया। उनको न कोई सहारा देने वाला था, न सवेदना। घुटते-घुटते मर जाना ही उनकी आखिरी मजिल थी। चीन की सडको पर जजीरो से बँधे और चिथड़े पहने दासो के झुण्ड के झुण्ड देखे जा सकते थे। इनके हाथो और चेहरो को दाग कर हाँका जाता था। उधर दासस्वामियो की ऐशो-इसरतभरी हवेलियाँ अट्टहासो से अनुगुजित होकर उनके घावो पर नमक छिडकती रहती थी।

अत्यन्त दुखी होकर कई दास और खेत मजदूर जगलो और पहाडो मे भागने लगे। मौका पाकर सरकारी अधिकारियो पर हमला भी करने लगे। वे खानो के प्रबन्धको को घात लगा कर मार डालते और हथियारो को छीन कर भाग खडे होते। धीरे-धीरे उन्होने सगठित होकर विद्रोह करने की योजनाएँ बनाना शुरु कर दिया।

प्राचीन चीन के इतिहास मे सबसे बडा विद्रोह पहली शताब्दी ई.पू. के आरम्भ मे हुआ जिसे 'लाल भौंहवालो के विद्रोह' के नाम से अकित किया गया है। विद्रोही नेता फान चुन एक महान् वीर युवक था। लडाई की तैयारी करते हुए फान चुन और उसके साथियो ने अपनी भौहो पर लाल रग लगा लिया था ताकि वे सरकारी सैनिको से अलग दिखाई दे। उनके साथ बहुत-से लोग भी मिल गए।

झुण्ड के झुण्ड विद्रोहियो और जनसमर्थको ने मिल कर राजधानी मे यह हमला बोल दिया। फौज मे इस अचानक हमले से भगदड मच गई। नगर मे कई स्थानो पर आग जलती दिखाई दी सडक पर मार-काट होने लगी। राजा अपने महल मे छिप गया किन्तु विद्रोहियो ने महल को घेर लिया और राजा को पकड़ कर उसका सिर काट डाला। किन्तु विद्रोहियो की भूल यह हुई कि

उन्होने दूसरे राजा को गद्दी सौंपना मजूर कर लिया। वे अपना लक्ष्य पाने मे विफल हो गए। उनमे से कुछ मुखबिर के रूप मे गद्दार निकल गए और 1000 से अधिक विद्रोहियो को मृत्युदण्ड देकर विद्रोह को कुचल डाला गया।

किन्तु डेढ सौ साल बाद सन् 184 ई मे चान भाइयो ने विद्रोहियो को पुन सगठित किया। क्रमश विद्रोह की आग सभी मध्यवर्ती भागो मे फैल गई। इसे पीली पट्टीवालो का विद्रोह कहा गया क्योकि विद्रोही सिर पर पीली पट्टी बॉधते थे। लगभग सारे ही तत्कालीन चीन मे शोषित विद्रोहियो और शोषक दासस्वामी—राजा और उसके समर्थको के बीच घमासान युद्ध छिड गया। किन्तु शाही गुप्तचर विद्रोहियो की एकता को तोडने मे सफल हो गए। शाही सेना ने सहसा विद्रोहियो के शिविर पर हमला करके उन्हे नदी की ओर पीछे धकेल दिया, जहाँ उनके बहुत-से विद्रोहियो और उनके समर्थको को डूबने को मजबूर कर दिया गया। बाद मे अनेक को मार डाला गया। इस तरह 'पीली पट्टी वालो का विद्रोह क्रूर दमन का शिकार हो गया।

फिर भी अगले 20 वर्षो तक यत्र-तत्र शोषितो के विद्रोह चलते रहे।

प्राचीन यूनान—यूनान एक पहाड़ी देश है और यूरोप के दक्षिण मे बालकन प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग मे स्थित है। यहाँ के पहाड खडे और चट्टानी है। उन पर झाडियॉ और थोडी-बहुत घास उगती है। मैदानो की भूमि उपजाऊ है। यूनान मे लोहा, ताँबा चाँदी और सगमरमर पाये जाते हैं। प्रकृति ने इसे दक्षिणी, मध्य और उत्तरी भागो मे बाँटा है। दक्षिणी यूनान 'पेलोमोनेसस' के पहाडो और सागर के बीच स्थित सॅकरे मार्ग को 'थर्मापिली का गलियारा कहा जाता है।

यूनान के इतिहास मे पौराणिक कथाओ का महत्त्व है। इनमे हरक्युलिस की कथाएँ आरगोनाटो की कथाएँ तथा देदालस और इकारस की कथा' प्रमुख हैं। विश्वविख्यात महाकवि होमर के महाकाव्य इलियड और ओडिसी' की रचना का आधार 'ट्राय अभियान' से सम्बन्धित गीत हैं।

यूनान मे वर्गों की उत्पत्ति—ग्यारहवी-नौवीं शताब्दी ईसा पूर्व मे यूनान मे वर्गों की शुरुआत हो गई थी। इसका मुख्य कारण लोहे के औजारो का फैलाव था जिनसे खेतो की जुताई आसान हो गई बुवाई का क्षेत्रफल बढ गया और पैदावार मे काफी इजाफा होने लगा। इससे होमरकालीन कबीलो मे पारस्परिक झगडो ने वर्ग-विभाजन की नीव डाल दी। इससे पुरानी सामुदायिक व्यवस्था धीरे-धीरे दासप्रथा की व्यवस्था मे बदलने लगी।

इससे यूनानी समुदाय मे त्रि-स्तरीय विभाजन देखने को मिला—दास-स्वामी गोत्र के सामान्य किसान और दास।

लोहे क औजारो के उपयोग से बढी पैदावार पर कब्जा करने के लिए विजयी कबीलो के सेनापति पराजितो के माल को लूट लेते थे बन्दियो को दास बना कर उनसे जबरन मेहनत करवाते थे। अब सम्भ्रान्त यूनानी दासो से खेती करवाने लगे कपडा बुनवाने लगे फसल कटवाने लगे मवेशी चरवाने लगे, खाना पकाने का काम भी करवाने लगे। जब सम्भ्रान्तो के पास मवेशियो की सख्या आवश्यकता से अधिक हो जाती थी, तो वे ताँबे काँसे बढिया वस्त्र सोने के आभूषण के साथ विनिमय का धन्धा कर लिया करते थे।

धीरे-धीरे सेनानायको और मुखियाओ का पद मौरुसी बन गया साथ ही उनकी सम्पत्ति भी मौरुसी बन गयी। वे स्वय को देवताओ की सन्तान बताने लगे। प्राकृतिक शक्तियो की उपासना उनका धर्म था। उन्होने देवताओ का मानवीकरण कर दिया था। बादलो के जन्मदाता' जीयस' की इच्छा से वर्षा होती है। पृथ्वी को हिलाने वाला' समुद्रदेव 'पोसीडन' आपत्तियाँ लाने वाला देवता है। इसी तरह वन का देवता सटीरोस शराब का देवता 'डायोनिसस' और धातुओ का सरक्षक हेफेस्टोस तथा व्यापार का सरक्षक हर्मीज था।

कलाओ का देवता युवा अपोलो' था तो उसकी सहचरी देवियाँ 'म्यूज' जो गाना काव्य और इतिहास को सरक्षण और विकसित करती थी। देवता सबसे ऊँचे पर्वत ओलिम्पस पर रहते थे इसलिए उन्हे ओलिम्पी' देवता भी कहा जाता था।

दयालु हृदय प्रोमेथियस' ऐसा वीर नायक था जिसने हेफेस्टोस से आग को चुरा कर लोगो को सौंप दिया। अन्य कथाओ म 'ओडिसियस की अपने अन्तिम पोत के विनाश की कहानी पेट्रोक्लीज के दाहसस्कार की गाथा और दिमीतर और पर्सीफोनी की घटना यूनानियो मे अत्यन्त लोकप्रिय थी। इन कथाओ मे सहज विश्वास की समानता मिस्र, बेबीलोन और भारत के प्राचीन वासियो की सहज आस्थाओ के साथ की जा सकती है।

यूनान मे दासप्रथा का विकास—पाँचवीं शताब्दी ई पू. तक यूनान मे दासप्रथा पूरी तरह विकसित हो चुकी थी। दासो की सख्या मे बेतहाशा बढोतरी हो गयी। अधिकाश दास लड़ाइयो से मिलते थे। युद्धबन्दियो को ही नहीं, पराजित शत्रु-क्षेत्र मे पकड़ी हुई स्त्रियो और बच्चो तक को भी दास बना लिया जाता था। भूमध्यसागर और कालासागर-तटीय क्षेत्रो से यूनानी माल के एवज में दासो का आयात किया जाने लगा था। दासी के बच्चे दास होते थे हालाकि

यूनान मे दासियो का जीवन अत्यन्त कठिन होने के कारण इनके बच्चे बिरले ही जिन्दा रह पाते थे।

यूनान मे दासो की मण्डियाँ लगती थी। यहाँ मर्दो औरतो और यहाँ तक कि बच्चो तक की खरीद–फरोख्त होती थी। ग्राहक इस जिन्दा माल' की जवानी शारीरिक ताकत आदि की जाँच–पडताल कर उसे खरीदता था।

यूनानी सबसे भारी काम दासो से करवाते थे। पत्थर और धातुओ की खानो मे दिन–रात काम करके उन्हे खनिज धातु और सगमरमर निकालने पडते थे। मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कारखानो मे उन्हे पानी और ईंधन ढोना पडता था। दास घरेलू नौकर का काम भी करते थे। दासो से मार–पीट कर ही काम करवाया जाता था। उनके कामो की निगरानी करने वाले उन पर कोडो की बरसात करते रहते थे। दासो को सुस्ताने का मौका नही दिया जाता था। शायद ही कोई दास होगा जिसकी पीठ पर कोडे की मार के निशान न हो।

दासस्वामी की सख्त हिदायत थी कि काम मे जोते रखने के लिए 'दास को कोडे से पीटो गला घोटो पैरो से कुचलो, जलती सलाखो से दागो हाथ–पैर मरोडो, नाक मे सिरका डालो पेट पर ईटो का बोझ रखो जो चाहो— करो किन्तु सुस्ताने का मौका मत दो।

किन्तु बावजूद इस प्रकार के क्रूर दमन के दासो की घनीभूत पीडा विस्फोट मे भी रूपान्तरित हो जाती थी। दास अपने मालिको को नुकसान पहुँचाने का कोई मौका नही चूकते थे। वे काम के औजार तोड देते थे जानवरो को विकलाग कर डालते थे काम को उलटे तरीके से करके हानि पहुँचा देते थे भागने की सफल–असफल कोशिशे करते रहते थे और कई बार मौका पाकर निर्दयी मालिक को मार डालते थे। कभी–कभी वे विद्रोह भी कर देते थे। यह वर्ग–सघर्ष का प्रारम्भिक स्वरूप था—मालिको के विरुद्ध दासो के सघर्ष की भूमिका।

एथेस की समृद्धि मे दासो की अहम भूमका थी तो वहॉ के दासप्रथात्मक जनतन्त्र की स्थापना की पृष्ठभूमि मे भी दासो के सघर्षो का दबाव था। यद्यपि इस प्रकार की प्रणाली मे कुछ श्रमिक मामूली सुविधाएँ पाने मे सफल भी हुए, किन्तु एथेनी जनतन्त्र दासो पर दासमालिको का अकुश बनाए रखने का मकसद पूरा करता था। एथेस की तरह ही कई दूसरे यूनानी नगरराज्यो मे भी दासप्रथात्मक जनतन्त्र शासन प्रणाली का आरम्भ हुआ किन्तु सब जगह दासो पर ही आधिपत्य था।

फिर भी इस सीमित जनतन्त्र' ने भी यूनानी संस्कृति के विकास में अपनी भूमिका अदा की जिसके फलस्वरूप लेखन शिक्षा ओलिम्पिक खेल चित्रकला नृत्य संगीत रंगमंच, दुखान्त नाटक कॉमेडी वास्तु मूर्तन और ज्ञान-विज्ञान का अच्छा-खासा फैलाव हुआ। हेरोडोटस डेमोक्रिटस अरस्तू और सुकरात को इसी दौर मे अपने विचार-स्वातन्त्र्य के कारण दमन का शिकार होना पडा किन्तु उनकी अमूल्य धरोहर ने मानव-विकास के आगामी मार्गों को प्रशस्त किया।

यूनान पर मकदूनिया के आधिपत्य से यूनान का पतन हो गया।

शोषक वर्ग की चेतना—यूनान का शोषक वर्ग उन विद्वानो को सहन नही कर सकता था जो उनके हितो के विरुद्ध स्वतन्त्र विचार रखते थे। ऐसे विद्वानो मे डेमोक्रिटस भी था जिसने देवी-देवताओ के अस्तित्व का खण्डन किया था। एसा ही एक और विचारक था जिस पर नास्तिक होने का अभियोग लगाया गया था क्योकि उसने सूर्य को देवता न मान कर दहकता हुआ गोला कह दिया था। इसलिए उसकी रचनाओ को जला डाला गया। उसे एहिका से भाग कर अपनी प्राणरक्षा करनी पडी। डेमोक्रिटस ने भी जब देवी-देवताओ के प्रति लोगो की अंधी आस्था पर चोट की दासस्वामियो ने उसकी रचनाओ को नष्ट करने उसके अनुयायियो को प्राणदण्ड देने कोड़े लगाने जेल मे बन्द करने सहित उनको सारे अधिकारो से वंचित कर दिया।

दासस्वामी अरस्तू के स्वतन्त्र चिन्तन के कट्टर विरोधी थे और सुकरात जैसे महान् विद्वान को तो दण्डस्वरूप जहर देकर मार ही डाला गया था। जो कोई भी भाग्यवाद का विरोध करता उसे अपनी जान से हाथ धोना पडता था। यद्यपि सुकरात जैसे चिन्तको ने विश्व-भर मे प्रतिष्ठा अर्जित की किन्तु शोषक वर्ग ने उसे मरन को विवश किया। ऐसे ही और भी कितने ही विद्वान उनके द्वारा दण्डित किए गए। पकडे हुए दास पर किए गए क्रूर दमन की और सकेत किया ही जा चुका है। किन्तु उनका यह दमन चक्र भी सामान्यजन और भागे हुए दासो की चेतना को नेस्तनाबूद नहीं कर सका।

शोषित वर्ग के विद्रोही तेवर—यूनान मे दासप्रथात्मक समाज के जनतन्त्र की स्थापना का श्रेय दासो और सामान्यजन के लगातार के विद्रोहो यूनान के विद्वानो के विचारो और स्वतन्त्र आबादी के बडे भाग के आम लोगो द्वारा निर्मित सांस्कृतिक संरचना और विकास को ही दिया जाना उचित है जिन्होने पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व एथेंस को सारे यूनान का सांस्कृतिक केन्द्र

बनाया। वहाँ दासप्रथात्मक जनतन्त्र अन्य यूनानी नगरो के राज्यो से पहले ही कायम हो चुका था और काफी उन्नत स्थिति को हासिल कर चुका था।

समस्त यूनानी सस्कृति का निर्माण दासो का घोरतम शोषण करके ही सम्पन्न हुआ था। क्योकि सबसे भारी और कठोर काम उन्ही से करवाया गया था। दासो के लिए यूनान एक ऐसा कारावास था जहाँ उनके भाग्य मे मार खा कर कडी मेहनत करते रहना क्षण-क्षण अपमान झेलते रहना यन्त्रणाएँ भोगना और जिन्दा मौत' से आतकित रहना ही एकमात्र दैवी विधान बन चुका था। फिर भी दासो का सघर्ष मौका पाते ही ऊभर पडता था।

ऐसा ही सघर्ष पाँचवी सदी ई पू. मे उस समय हुआ जब स्पार्टा मे एक भयकर भूकम्प आया और इससे काफी विनाश हुआ। स्पार्टा नगर और उसके आसपास के हेलटो (शोषितो) ने इस सुनहरे मौके का फायदा उठाते हुए दासस्वामियो से बदला लेने के लिए उन पर एकाएक हमला कर दिया। स्पार्टावासियो ने हमला तो रोक दिया पर विद्रोह को अकेले ही कुचलना उनके बस की बात न थी। उन्हे दूसरे नगरराज्यो के दासस्वामियो के सामने मदद के लिए गिडगिडाना पडा। स्पार्टा के दासस्वामियो के दूत भी हेलटो के सामने घबराए हुए दिखलाई दे रहे थे। कुछ नगरराज्यो ने स्पार्टा की मदद की। घोर सघर्ष के बाद स्पार्टा को तो छोडना पडा किन्तु फिर भी हेलटो ने अपने एक भाग को आजाद कर लिया।

सघर्षो की बदौलत कतिपय स्वतन्त्र श्रमिको— थेटीज —ने लगभग सभी सरकारी पदो पर नियुक्त होने का हक हासिल कर लिया। अनेक गरीब सरकारी कर्मचारी हो गए।

प्राचीन रोम—अपेवाइन प्रायद्वीप के मध्य मे टाइबर नदी है जो पहाडो से निकलती है और मैदानी भाग को पार करते हुए समुद्र मे जा मिलती है। प्राचीन काल मे मैदान दलदली थे और पहाडियाँ चौडी पत्ती वाले वृक्षो के वनो से ढॅकी हुई थी। इन मैदानो मे लैटिन कबीले रहते थे। टाइबर के मुहाने से 25 किलोमीटर ऊपर नदी के बाये तट पर रोम नाम का एक छोटा-सा नगर था। रोम के प्राचीनतम निवासियो के वशज पेट्रीशियन (लैटिन मे पिता के वशज') कहलाते थे। पेट्रीशियनो के हर कुटुम्ब (लैटिन मे फैमीलिया) को समुदाय के खेत मे एक टुकडा मिला होता था। पेट्रीशियनो के मुखियाओ की एक परिषद् थी जो सेनेट' कहलाती थी। मुखिया (राजा) और सेनेट मिल कर शासन चलाते थे।

रोम के चारो ओर उपजाऊ भूमि थी। टाइबर के मुहाने मे पोतो के लंगर डालने के लिए अच्छे घाट थे। वहाँ से रोम और आगे इटली के भीतरी भागों के रास्ते थे। धीरे-धीरे रोम मे बाहर से आकर व्यापारी और शिल्पी भी बसने लगे। इसके अलावा रोमवासी भी आस-पास के नगरों को जीत कर उनके कुछ लोगो को रोम मे लाकर बसा लेते थे। इस तरह रोम की आबादी तेजी से बढती गयी। रोम मे आकर बसे लोग और उनक वशज 'प्लेबियन (लैटिन—— प्लीब ——सामान्यजन) कहलाने लगे। वे कर देते थे और सैनिक के रूप मे काम करते थे। कर न दे सकने की स्थिति मे उन्हे दास बना लिया जाता था।

पेट्रीशियनो ने अपनी शासन प्रणाली को 'रिपब्लिक' (गणतन्त्र) नाम दिया। इसमे प्लेबियन अधिकाररहित थे जो अपनी स्थिति को बेहतर बनाने की माँग करते रहते थे। शनै -शनै पैट्रीशियनो और प्लेबियना मे सघर्ष की स्थिति पैदा हो गयी। प्लबियनो ने अपना वर्चस्व कायम करके वीटो (लैटिन—'मैं मना करता हूँ') का अधिकार प्राप्त कर लिया।

किन्तु कुछ समय के बाद पेट्रीशियनो के सम्पन्न लोगो के समान पेब्लीशियनो मे से भी एक भाग सम्पन्न लोगो का हो गया। इससे पेट्रीशियन और प्लेबियन दोनो के सम्पन्न लोगो का मिल कर पैदा हुआ अभिजात वर्ग गणतन्त्र के लिए निर्वाचित होने के लिए एकमात्र *अधिकारप्राप्त* घटक हो गया। इस तरह रोम म अभिजातो का प्रभुत्व पैदा हो गया।

अब कौंसुल और दूसरे पदो पर भूमि और दासा के मालिक सम्पन्न पेट्रीशियन और प्लेबियन ही आसीन हो पाते थे। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व शायद ही कोई सम्पन्न था जो खुद अपनी जागीर मे काम करता हो। सम्पन्न रोमनो की जमीन पर कम्मी——मजदूर या दूसरे देशो से लाये गये दास ही काम किया करते थे।

इसके परिणामस्वरूप रोमन गणतन्त्र मे वास्तविक सत्ता सम्भ्रान्त दास-मालिको के कुछ दर्जन परिवारो के हाथो मे ही सकेन्द्रित हो गयी। रोमन गणतन्त्र दासप्रथात्मक और अभिजातीय गणतन्त्र बन कर रह गया जिसमे सेनेट के सारे निर्वाचित प्रतिनिधि हर वर्ष सम्पन्न वर्ग के कुटुम्बो मे से आने लगे। यह एकलवर्गीय गणतन्त्र था। इससे रोमन समाज स्पष्ट तौर पर शोषक और शोषित वर्गो मे विभाजित हो गया।

रोमन गणतन्त्र के पास शक्तिशाली सुसगठित और सुप्रशिक्षित सेना थी। वह मुख्यत उन किसानो के वशजों से बनी थी जिनके पास कृषि-भूमि होती

थी। यह लीजनो मे बँटी हुई थी जिनमे हरेक लीजन मे 4500 सैनिक होते थे। लीजन को छोटे-छोटे दस्तो मे विभाजित किया जाता था। ये दस्ते मैदानो वनो, पर्वतो और नगर की सडको पर भी लड सकते थे।

तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य मे रोम ने दक्षिणी इटली के यूनानी नगरो को भी जीत लिया और इस तरह अपेनाइन प्रायद्वीप पर उसका आधिपत्य कायम हो गया। रोम-शासित प्रदेश की सीमाएँ अब सिसिली को छू रही थी, जहॉ रोमनो की एक अन्य शक्तिशाली कब्जावर—कार्थेज—की सेना से टक्कर हुई। इसे प्यूनिक युद्ध' के नाम से जाना जाता है। यह 20 साल तक चला। अन्तत रोमन जीत गए। उन्होने सिसिली के अलावा सार्डिनिया और कोर्सिका द्वीपो पर भी अधिकार कर लिया।

हैनीवाल के सेनानायकत्व मे कार्थेज ने रोमनो को घेर कर दूसरा प्यूनिक युद्ध' शुरू कर दिया जो 12 साल तक चला। एक बार तो रोमनो को हार का सामना करना पडा किन्तु उन्होने फिर से सगठित होकर कार्थेज को जीत लिया। इस विजय मे इटालवी किसान सैनिको ने रोम को अपने लक्ष्य तक पहुँचाया।

फिर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व मे तीसरा प्यूनिक युद्ध' शुरू हुआ किन्तु रोमनो का विजय अभियान जारी रहा। कार्थेज मे हथियारो की कमी भुखमरी और बीमारियो की भरमार ने उसे फिर से पराजित होने को विवश कर दिया। रोमनो ने कार्थेज नगर को आग लगा दी।

इसके अलावा रोमनो ने सीरियाई राज्य को पराजित किया मकदूनिया और यूनान पर अधिकार किया।

अपने इन अधीनस्थ देशो मे रोमनो ने बुरी तरह लूट-पाट मचायी और बन्दियो को दास बना कर बेच दिया। एक अभियान मे तो उन्होने डेढ लाख बन्दियो को बेच डाला। रोमन अपने द्वारा जीते गए देशो को प्रोविसिया' (प्रान्त) कहते थे। इन प्रान्तो के लोग यदि टैक्स न चुका पाते तो उनको सपरिवार दास बना लिया जाता था।

रोमन राज्य मे सैकडो दास मण्डियाँ हो गई थीं उनमे सबसे बड़ी मण्डी ईजियन सागर के डेलोस द्वीप पर थी। यहाँ प्रतिदिन 10 हजार दास बेचे जाते थे। इटली मे बहुत बड़ी तादाद मे दासो का आयात किया जाता था।

रोम मे अभिजात वर्ग ने किसानो से काफी तादाद मे जमीन खरीद ली थी इससे वहाँ जागीरी प्रथा का प्रचलन शुरू हो गया। इन जागीरदारो की

जमीन पर दासो से भारी हलो द्वारा खेती करवाई जाती थी, कुदालियो और फावडो से जमीन को मुलायम करवाया जाता था। दास हथचक्कियो से अनाज पीसते थे अँगूर और जैतून पेरते थे और मवेशी चराते थे। वे खदान और मल्लाही का काम करते थे।

ताकतवर और फुर्तीले दासो को रोमवासी हथियार चलाना सिखाते थे और उन्हे आपस मे दगल करने को मजबूर करते थे। ऐस दासो को ग्लेडियेटर कहा जाता था। दगलो के लिए विशेष अखाडे बनाए जाते थे, जिन्हे 'एम्फीथियेटर' कहा जाता था। इसमे एक प्रागण—अरेना—होता था और चारो ओर दर्शको के बैठने के लिए गैलरियाँ। प्रागण मे ग्लेडियेटरो को कोडे मार कर लडवाया जाता था। ग्लेडियेटरो की लडाई म ज्यो-ज्यो एक-दूसरे का खून बहता—अभिजात दर्शको के लिए हर्षोल्लास का क्षण होता था। ग्लेडियेटरो को भूखे शेर या बाघ से भी लडवाया जाता था। इस तरह के नरभक्षी तमाशे को देखने वाले शराब पीते जाते और जश्न मनाते जाते थे। यह शोषक वर्ग के मनोविनोद का प्रमुख तमाशा होता था।

दासो के चेहरों पर मालिक का ठप्पा दाग दिया जाता था।

दासमालिक की मान्यता—दूसरे क्षेत्रो के दासमालिको को जीत कर अपने क्षेत्र का विस्तार और दासो की सख्या मे बढोतरी करना, दासो की मण्डियाँ लगा कर खरीद-फरोख्त करना लूटमार और क्रूरतम हिसा और आतक फैलाना खूनी दगलो से मनोरजन करना कोड़े मार कर कठोर से कठोर काम करवाना विद्रोही रुझान और विचारो का दमन तथा पराजितो की बस्तियो को जला डालना।

इन्ही कारणो से प्राचीन विश्व के और किसी देश मे इतने अधिक दास न थे जितने कि रोम मे। इसी तरह और कही दासो का निर्मम शोषण नही किया जाता था जितना कि रोम मे। दासप्रथा-व्यवस्था का सर्वाधिक विकास रोम मे ही हुआ।

बहुत बड़े पैमाने पर दासो के आयात और रोम द्वारा प्रान्तो की लूट ने दासस्वामियों को और भी अधिक धनी बना दिया था जबकि किसानो की हालत लगातार शोचनीय होती जा रही थी क्योकि आयातित दासो से खेती करवाना सस्ता पड़ता था।

उजड़े हुए हजारो किसानो को इकट्ठा करके दो भाइयो—टाइबेरियस और ग्रेयस ने किसानो से छीनी गई जमीन को वापिस करने का अभियान

छेड़ा। सघर्ष हुआ। अल्पकालीन सफलता भी मिली, किन्तु उक्त दोनो भाइयो को कत्ल करवा कर दासस्वामी फिर हावी हो गए।

स्पार्टकस के नेतृत्व मे दासो का विद्रोह—74 ईसा पूर्व मे कापुआ नगर मे, जहाँ गलेडियेटरो के लिए एक बहुत बडा जेल-प्रशिक्षण केन्द्र था वहाँ के ग्लेडियेटरो (दगली दासो) ने विद्रोह का षड्यन्त्र रचा। प्रशिक्षणालय के प्रहरियो को इसका पता चल गया फिर भी लगभग सौ-सवा सौ षड्यन्त्रकारी वहाँ से भाग निकले और 'विसूवियस' पहाड़ पर जा छिपे। उन्होने स्पार्टकस' को अपना नेता बनाया। स्पार्टकस बहुत समझदार ताकतवर और मजबूत इरादो वाला बन्दी दास था। उसका जन्म उत्तरी बाल्कन मे हुआ था जहाँ रोमनो ने पकड़ कर उसे ग्लेडियेटर प्रशिक्षणालय भेज दिया था। प्रशिक्षणालय से भागने मे सफल होने वालो मे से वह भी था।

शुरू मे विद्रोहियो के पास हथियार नहीं थे लेकिन वे मौका पाकर दासमालिको की जागीरो और रास्तो से गुजरने वाली हथियारो से लदी गाड़ियो पर हमला करके हथियार छीनने मे कामयाब होने लगे। इस कामयाबी की खबर पाकर जागीरो के दास भी भाग कर स्पार्टकस से आ मिले।

दासस्वामियो को इसकी खबर लगी तो तीन हजार रोमन सैनिको ने स्पार्टकस के छिपने की जगह को घेर लिया और पहाड़ के नीचे जाने वाली एकमात्र पगडण्डी पर घात लगा कर बैठ गये ताकि भूख के मारे विद्रोही आत्मसमर्पण करने को मजबूर हो जाएँ। किन्तु दासो ने अगूर की बेलो से लम्बी सीढियाँ बना लीं और रात मे चुपके-से पहाड़ से नीचे उतर आए। विद्रोहियो ने अप्रत्याशित रूप से रोमन दस्ते पर आक्रमण कर उसे पूरी तरह नष्ट कर दिया।

रोमन दस्ते को ध्वस्त करने की दासो की जीत का समाचार ज्यो ही सारे देश मे फैलने लगा सारी इटली की मण्डियो से भाग कर दास स्पार्टकस के दस्तो मे जा मिले। अब स्पार्टकस के नेतृत्व मे दसियो हजार दासो का जत्था था। वे अलग-अलग भाषाएँ बोलते थे जो एक-दूसरे की समझ से परे थीं, किन्तु स्पार्टकस के कुशल नेतृत्व ने उन्हे एक ही प्रकार के अनुशासन मे प्रतिबद्ध कर दिया था। रोमन सेना के नमूने के तौर पर उसने पैदल, अश्वारोही और गुप्तचर दस्तो का गठन किया। विद्रोहियो के शिविर मे लुहार दिन-रात हथियार बनाने मे जुट गए।

स्पार्टकस ने अपनी फौज को लेकर उत्तर की ओर कूच किया। उसका इरादा था कि वह दासो को बाहर ले जाकर उन्हे दासत्व से आजाद कर अपने-अपने देश लौटने को निर्बन्ध कर सके।

जब सैनेट को इसका पता चला तो उसने दोनो कोसुल जनरलो (वाणिज्य महादूत) को बिखराव की स्थिति मे दासा के समूहो को कुचलने के लिए भेजा। उनको हिदायत थी कि बिखरे दासो का दमन करके विद्रोहियो की मुख्य फौज को घेर लिया जाय और उसका पूरी तरह सफाया कर दिया जाय। किन्तु स्पार्टकस उनकी योजना को भॉप गया और उसने उन दोनो को बिना मौका दिए एक-एक करके पछाड दिया। रास्ते मे मिलने वाले रोमन दस्तो का सफाया करते हुए विद्रोही समग्र इटली को पार करते हुए पो नदी की घाटी मे पहुँच गए। किन्तु अचानक ही स्पार्टकस का वापस लौटना पड़ा क्योकि बहुत–से दास इटली छोड कर नही जाना चाहते थे।

विद्रोहियो के लौटने की खबर पाकर दासमालिको ने फिर आपस मे मिल कर प्रत्याक्रमण के क्रेरास नामक एक अमीर रोमन को अपना सेना नायक बनाया और एक विशाल सयुक्त सेना का गठन करक उसकी कमान उसको सौपी।

इधर स्पार्टकस दक्षिणी–पश्चिमी अन्तरीप पार कर सिसिली पहुँचना चाहता था ताकि वहॉ से दासा को सगठित कर फिर से शत्रुसेना पर हमला बोल सके। किन्तु अचानक समुद्र मे तूफान आ जाने के कारण स्पार्टकस सिसिली नही पहुॅच सका। क्रेसस न मौका पाकर सॅकर स्थली सँयोजी पर कब्जा कर लिया जो अन्तरीप से बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता था और एक सिरे से दूसरे सिरे तक गहरी खाई और मिट्टी की दीवार बना दी। इससे विद्रोहियो को चारो ओर से घेर लिया गया। दास विद्रोहियो के पास राशन की कमी होने से भुखमरी की नौबत आ गई।

ऐसी विकट स्थिति मे स्पार्टकस ने विद्रोहियो का आह्वान करते हुए कहा––'ऐ मरे जाँबाज साथियो भूखा मरते हुए मरने से तो लड़ते हुए आजादी के लिए ही कुर्बान हो जाना बेहतर होगा।' इसी आह्वान के साथ उस एक निहायत सर्द और तूफानी रात मे उसने शत्रु की घेराबन्दी पर धावा बोल दिया। एक जगह पर खाई को पार कर और मिट्टी की दीवार पर कब्जा करके विद्रोही घेरा तोड़ कर बाहर निकलने मे कामयाब हो गए। इस दौर मे दास विद्रोहियो का हिस्सा स्पार्टकस से पीछे रह गया जिस पर क्रेसस ने हमला कर दिया और उसे कुचल दिया। उधर स्पार्टकस ने क्रेसस के उन दस्तो पर हमला बाल दिया जो रोमन सेना से मिलने की चेष्टा कर रहे थे।

तीन साल की लड़ाई के बाद ईसा पूर्व 71 मे विद्रोहियो और रोमनो के बीच अन्तिम मुकाबला हुआ। स्पार्टकस क्रेसर को मार कर शत्रुसेना को

नेतृत्वहीन करना चाहता था। इस प्रयास मे यद्यपि वह दो रोमन सेनानियो को मारने मे सफल हो गया किन्तु खुद उसके पुट्ठे मे भी भयकर चोट लगी। घायल होने के बावजूद एक घुटने पर खड़ा होकर वह लडता रहा। रोमन उसे जिन्दा न पकड़ सके। लडते-लडते उसके शरीर के टुकडे-टुकडे हो गए जिन्हे उसके साथियो ने बटोर कर अज्ञात स्थान पर गाड दिया।

फिर कापुआ मे 6000 दास विद्रोहियो को बन्दी बना कर खडे किए गए सलीबो पर लटका दिया गया बाकी बचे विद्रोही भाग निकले। अन्तत रोमनो ने विद्रोह को पूरी तरह कुचल दिया। बाद मे ईसा के सलीब पर चढाए जाने, यन्त्रणा देने ईसा द्वारा सहन करने और फिलस्तीन मे पुन पैदा होने की घटना जोड दी गई। इसी से ईसाई धर्म की उत्पत्ति हुई और फिर ईस्वी सन् का आरम्भ हुआ।

वद्रोही दासो के नेता स्पार्टकस के बारे मे लेनिन ने लिखा है— स्पार्टकस दासो के महानतम विद्रोहो के एक महानतम वीर नेताओ मे था।'

निवर्तन

दासप्रथात्मक व्यवस्था पुरुषप्रधान या पितृपक्ष-व्यवस्था थी, जो मातृ-प्रधान या मातृपक्ष-व्यवस्था के विध्वस की नीव पर खड़ी की गई थी। स्वभावत यह पराजित कबीलो के लोगो या दास मण्डियो से खरीदे गए दासो और विशेषकर भारत जैसे वर्ण-व्यवस्था वाले दलित' दासो नारी दासियो एव दास बच्चो के लिए असह्य उत्पीडन घोर तिरस्कार, खूनी लड़ाइयो व अन्य विविध प्रकार की आपदाओ का समुच्चय बन कर उपस्थित हुई। दलितदास और नारी का जितना दमन इस व्यवस्था मे हुआ वह वर्णनातीत है। भारत के अलावा दूसरे देशो जैसे मिस्र चीन यूनान रोम आदि मे दास भागे, जागे और विद्रोही बन कर सघर्ष भी किए किन्तु दलित तो हजारो सालो तक सजाएँ भोगते रहे क्योकि उनकी जागने की मानसिकता को ही उनसे अपहृत कर लिया गया था—अत दलित वर्ग (भारत का अछूत—पाँचवाँ वर्ण निम्नतम दास श्रेणी) को न तो जागने का मौका मिला और न ही उन्हे जगाने वाली किसी सवेदना को ही उभरने दिया गया। अत वह सघर्षशील बने बिना जिन्दा मुर्दा' बन कर अपनी लाश ढोता रहा। नारी का हाल कष्टो की सारी सीमाओ को पार कर गया।

मातृरूपा नारी मानवमात्र की उत्पादिका रही पत्नीरूपा नारी पोषिका रही भोग्या रही श्रमशीला रही किन्तु फिर भी जिन्दा दफना दी जाने वाली शव के साथ जला दी जाने वाली ही रही। उसकी भ्रूणहत्या की गई बड़ी होने पर मसला-कुचला जाता रहा उसे बेचा-खरीदा जाता रहा वह हर क्षण जीते-जी

मारी जाती रही। उसके साथ नीचे से नीचे दरजे का व्यवहार किया जाता रहा। कठपुतली की तरह नचा-नचा कर बेहाल कर दिया जाता रहा। फिर भी पुरुष का दिल नही भरा, उसकी खूनी आँखे रक्त-पिपासु बनी रहीं। एक नहीं हजारो सालो तक यन्त्रणा का यही चक्र चलता रहा। सम्पन्नता हो या विपन्नता---उसका घुटते-घुटते जीना-मरना चलता रहा।

किन्तु दासप्रथा के युगान्तर म असख्य दासो और गरीबो के श्रम के उपयोग ने रेगिस्तानो और जटिलतम जगलो को खेतो और बागो मे बदलने नगरो का निर्माण करने, नावो पर सागरो-महासागरो की यात्रा करने तथा अनेक आश्चर्यभरे स्मारको को खड़ा करने की स्थितियाँ पैदा कीं। उनके उत्पादक श्रम ने कुछ प्रतिभाओ को ज्ञान-विज्ञान, कला व अन्य सास्कृतिक क्रियाकलापो का विकास करने का अवसर प्रदान किया। इसी नींव पर विश्व-विकास की सारी इमारते खडी की जा सकने की सम्भावना बनी। यद्यपि अन्धविश्वास जन्य पद्धतिया भी पैदा हुईं, किन्तु ये अन्तत ज्ञान-विज्ञान का रास्ता न रोक सकी। चूकि अन्ध-विश्वासी जडतापूर्ण धार्मिक कर्मकाण्ड और ज्ञान-विज्ञान के नवाचार आपस मे छत्तीसी सम्बन्ध रखते रहे है, इसलिए उनमे सामजस्य नही हो सकता। विकास स्वय स्वभावत धर्मविरोधी होता है।

आगे चल कर जब दासप्रथा की व्यवस्था अपनी चरम अवस्था पर पहुँच कर अग्रगामी क्षमता खो चुकी तो उसका विकास ही उसकी समाप्ति का कारक बन गया। पुराने औजारो मे सुधार नए उपकरणो के आविष्कार और नई तकनीको-तरकीबो के होने से हर क्षेत्र मे पैदावार के बढने काम-धन्धो मे सुधार लाने प्रशासनिक सरचना को परिवर्तित करने की आवश्यकता पैदा हो गई। उधर शासक वर्ग को भी मजबूर होकर कृषिकारो दस्तकारो व अन्य तबको के दबावो के सामने झुकना पड़ा। दासप्रथा की जकडनो को शिथिल किया जाना अनिवार्य हो गया क्योकि वे आगे के विकास मे बाधक साबित हो रही थी। इसका एक और प्रमुख कारण यह था कि दासो गरीब लोगो दस्तकारो आदि के लगातार सघर्षो ने पुराने ढाँचे को चरमरा दिया था। और सबसे प्राथमिक कारण था---उत्पादन प्रणाली तथा उसके साथ ही उसके बीच के सम्बन्धो मे परिवर्तनो का पैदा होना।

अन्तत दासप्रथा की समूची सरचना ने सामन्ती व्यवस्था के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

वर्ग-चेतना दूसरा चरण (सामन्ती प्रथा)

सक्रमण काल पाँचवीं से पन्द्रहवीं सदी

प्रत्येक युग की व्यवस्था की बुनियाद और सरचना व्यष्टिक भी रही है साथ ही समष्टिक भी। चाहे वह आदिम साम्य की हो गोत्र-कबीलाई हो दासप्रथा हो, सामन्ती अथवा पूँजी प्रमुख हो—उसका व्यष्टिक विकास विशिष्ट देश और काल के मानव-श्रम की गतिशीलता पर निर्धारित होता रहा है जबकि उसका समष्टिक विकास इतर क्षेत्र व कालक्रम के पारस्परिक प्रभावो के रूपान्तरण की प्रक्रिया से गुजरता रहा है। अत प्रत्येक देश के विकास मे अन्यो से भिन्नता भी होती रही है जो उसका व्यष्टिक स्वरूप ही होता है और उसमे मौलिक समानताएँ भी रही है, जो उसके समष्टिक स्वरूप को दर्शाती हैं।

सामन्ती व्यवस्था का भारतीय सामन्ती ढाँचा यूरोपीय या अन्यत्रीय सामन्ती ढॉचे से अनेक बातो मे भिन्न है जिसे व्यष्टिक अथवा विशिष्ट सामन्तवाद कह सकते है, किन्तु उसमे अन्तर्निहित इतर क्षेत्रो के सामन्ती रूपो से समरूपता को उसकी सामन्ती समष्टिक एकरूपता ही कहा जायगा। विशिष्टीकृत सामान्यीकरण और सामान्यीकृत विशिष्टीकरण के सहबन्ध की समझ ही वैश्विक यथार्थ को उद्घाटित कर सकती है।

उत्पादन प्रक्रिया भी देश और काल के अनुसार कमोबेश इसी प्रकार की व्यष्टिक और समष्टिक गतिशीलता मे सचरित होती रहती है तदनुरूप उत्पादन के सम्बन्ध भी। वर्गभेद क्योकि शोषक और शोषित के रूप मे विकसित होते हैं अत उनकी चेतना और सक्रियता मे अधिकाशत समरूपता ही दिखाई देती है और जो देश-काल की परिस्थितिजन्य पैदा हुई भिन्नता दिखाई देती भी है तो वह मौलिक विषय-वस्तु मे उपस्थित नहीं दिखाई देती।

दासस्वामी प्रथा से सामन्ती व्यवस्था मे सक्रमण कब शुरू हुआ इस पर इतिहासकार एकमत नही हैं। किन्तु सारे मत-मतान्तरो पर विचार करने पर इस निष्कर्ष पर आसानी से पहुँचा जा सकता है कि उसका विकसित अस्तित्व पन्द्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे दृष्टिगोचर होने लगा था।

सामन्ती व्यवस्था वर्गीय समाज का दूसरा चरण था, जो श्रमशील कर्मकार की मेहनत का शोषण करता था। दासस्वामी प्रथा और सामन्ती प्रथा मे यह भिन्नता थी कि जहाँ दास से कोड़े मार कर दिन-रात काम लिया जाता था और उसका किसी भी वस्तु पर कोई अधिकार नहीं था—बल्कि उसे स्वय ही एक वस्तु बना दिया गया था, उपकरण मात्र—उसकी अपेक्षा सामन्ती व्यवस्था मे मेहनतकश लोग स्वामी के गुलाममात्र अथवा वस्तुमात्र नहीं थे इसकी बजाय अब वे जमीन के टुकड़े के स्वय मालिक बन गए थे—दास की श्रेणी से एक कदम आगे बढ़ कर सामन्त के कम्मी या भू-दास हो चुके थे। इस अर्थ मे दासप्रथा की अपेक्षा सामन्ती प्रथा विकास की अगली मजिल थी।

रोमन साम्राज्य के पतनकाल मे दासस्वामियो को यह महसूस हो चुका था कि अब दासो को इस तरह काबू म रख कर अपनी पैदावार नहीं बढ़ा सकते अत उन्होने उन्हे जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े दे दिए और अपना परिवार बनाने और पालने-पोसने की छूट भी। इस प्रक्रिया के शुरू होते ही सामन्ती समाज की नींव पड़नी शुरू हो गई।

इस प्रणाली के अन्तर्गत वैसे तो जमीन की मिल्कीयत शासक की ही होती थी किन्तु वे अपने चाटुकारो या चहेतो अथवा निकटतम लोगो को छोटे टुकडे देकर उनसे उनकी उपज का एक अच्छा-खासा हिस्सा वसूल कर लेते थे। मालिक का यह हिस्सा उन्हे बिना किसी श्रम के मुफ्त मे ही प्राप्त हो जाता था। अपने जमीनी टुकडा पर काम करने वाले ये भू-दास दरअसल छोटे किसान हो गए थे जिन्हे देय उपज का पहले से ही ज्ञान करा दिया जाता था अत वे देय भाग से अधिक पैदा करने मे रुचि लेने लगे ताकि अपने परिवार के रख-रखाव और भरण-पोषण के रूप मे बचा कर रख सके। इस तरह उत्पादकता मे पहले की अपेक्षा अधिक वृद्धि होने लगी।

यूरोप मे सामन्तवाद के उदय की शुरुआत उस समय से मानी जाती है जब रोमन प्रदेशो के अधिकाश भाग पर बर्बरो (जर्मन और स्लाव कबीले) का अधिकार हो गया। बर्बर शहरो और गाँवो को लूटते धनिको को कैद कर ले जाते और फिर उन धनिको को छोड़ने के लिए भारी फिरौती (मुक्ति-धन) की माँग करते थे अथवा उनकी जागीरो और चरागाहो पर कब्जा करने से पहले उनकी हत्या कर देते थे। कभी-कभी वे स्थानीय आबादी को उसकी आय का एक-तिहाई हिस्सा देने के लिए मजबूर कर देते थे। इस तरह रोम को कई बार लूटा गया और कला और विज्ञान की उपलब्धियो को ध्वस्त कर दिया गया। शिल्प और व्यापार क्षतिग्रस्त हो गए। किन्तु रोमनो ने आखिर यह नीति अपनाई

कि वे बर्बरो का स्वागत करने लगे। क्योकि बर्बर सामान्यजन को नुकसान नही पहुँचाते थे और साथ ही वहाँ के दासो को मुक्त कर देते थे।

चौथी सदी के अन्त से सातवी सदी के कालान्तर मे पूर्वी और पश्चिमी साम्राज्यो का अन्तिम रूप से विभाजन हो गया और वैजन्तिया एक अलग राज्य बन गया। वैजन्ती लोग अपने को रोमेयी और अपने राज्य को 'रोमेयी साम्राज्य' कहते थे। वैजन्तिया की आबादी मे यूनानी और उनसे प्रभावित पूर्व के दूसरे कबीले भी शामिल थे लेकिन सबकी प्रधान भाषा यूनानी ही थी।

वैजन्तिया रोम के पूर्ण विघटन को रोकने मे सफल हो गया, क्योकि उसके समाज की सरचना अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील थी। खेती मे अर्थात् बडे जमीदारो की जागीरो मे—दासश्रम का उपयोग पश्चिमी साम्राज्य की बनिस्बत कम पैमाने पर किया जाता था। दासो को बहुत समय से अपने खुद के औजार और जमीन के अपने टुकड़े तक रखने की छूट मिली हुई थी जिनके बिना उन्हे बेचा नहीं जा सकता था। वैजन्तिया के स्थायित्व का एक बडा कारण यह भी था कि उसके बडे शहर और व्यापारिक केन्द्र जैसे कुस्तुन्तुनिया अन्तिओक और सिकन्दरिया आदि बर्बरो के आक्रमण से बचे हुए थे। दूसरा कारण यह भी था कि वैजन्तिया यूरोप तथा पूर्व के देशो के बीच व्यापार का माध्यम बना हुआ था।

लगातार तीन सदियो मे वैजन्तिया मे दासप्रथा का क्रमिक विलोपन और साथ ही सामन्ती सम्बन्धो का क्रमिक तथा निरन्तर विकास होता रहा।

उधर जहॉ बर्बर लोग स्थायी रूप से अन्यो के साथ रहने लगे थे उन पर भी उनके सम्बन्धो का प्रभाव पडा और क्रमिक रूप से वे भी वर्गीय ढाँचे मे रूपान्तरित होने लगे। दूसरी ओर, बर्बर राज्यो की सेनाएँ भी ऐसे सम्पन्न लोगो से पुनर्गठित होने लगीं जो उन्हे नये हथियारो से लैस कर रहे थे। राजा अपनी सेना मे सम्पन्न लोगो या अपने ही अनुचरो को ऊँचे पदो पर नियुक्त करते थे तथा उन्हे अनुग्रह के रूप मे आसामी काश्तकारो सहित जमीन की मिल्कीयत दी जाती थी। इस प्रकार सानुग्रह प्रदान की गई जमीन सामन्ती जागीर (फ्यूड) कहलाती थी और उन्हे प्राप्त करने वाले सामन्त (फ्यूडल) कहलाने लगे। कालान्तर मे जागीर वशानुगत सम्पत्ति बन गयी।

इस तरह एक नये शासक वर्ग—सामन्त वर्ग का उद्भव हुआ। यह बड़े-बड़े भूखण्डो के हथियारबन्द अथवा सैनिक जमीदारो का वर्ग था जो अपनी जायदाद की सीमाओ के भीतर राजशक्ति के सारे क्रियाकलापो को पूरा किया करते थे। बहुसख्यक वास्तविक उत्पादको को अर्थात् किसानो को

जमीन के अपने छोटे-छोटे टुकड़ो के लिए बेगार या लगान के रूप मे भुगतान और राज्यशक्ति के स्थानीय प्रतिनिधियो अर्थात् जमींदारो की नानाप्रकार की चाकरी-भर करनी पड़ती थी।

ग्यारहवी शताब्दी के आरम्भ तक यूरोप मे सामन्तवाद के जड़ जमाने की सारी प्रक्रिया पूरी हो चुकी थी। सारी जमीन सामन्तो के हाथो मे आ चुकी थी जबकि सारे मेहनतकश लोग इस शासक वर्ग पर कमोबेश निर्भर करने लगे थे। इस अधीनता का कठिनतम स्वरूप भू-दासो की पराधीनता का था, जो अब अपने वशजो सहित अपने मालिक और उसकी चाकरी के लिए प्रतिबद्ध थे। भू-दासो को अपने मालिक की जागीर पर काम करना और उसकी जमीन को काश्त करना पड़ता था और उसे अपनी और अपने परिवार की उपज अर्थात् अनाज के अलावा मास मुर्गे कपड़े और चमडे जैसी दस्तकारी की चीजो के साथ अन्य प्रकार की सामग्री का एक हिस्सा भी देना होता था। भू-दास को अपने मालिक उसके परिवार और उसके अनेकानेक चाटुकारो का पेट भी भरना पडता था साथ ही उनके कपड़े और जूते तक का इन्तजाम भी करना पडता था। ये सब उपहार सामान या सामन्ती लगान कहलाते थे। यह सब उसे इसलिए करना पड़ता था क्योकि मालिक ने अपनी जमीन पर काश्त करने की छूट जो दी थी।

सामन्ती जागीर ही सामन्ती अर्थव्यवस्था की धुरी थी। यही रूस मे वोत्चिना इग्लैण्ड मे मेमोरियल इस्टेट' फ्रास और शेष यूरोप मे सेन्योरी कहलाती थी।

यह सामन्ती जागीर सामन्ती समाज और उसकी उत्पादन प्रणाली की बुनियादी इकाई थी और इस कारण इसने समाज राजनीतिक सगठन के स्वरूपो और समूचे तौर पर सास्कृतिक विकास पर भी निर्णायक प्रभाव डाल रखा था।

प्रत्येक माफिया सामन्त अपनी माफी अपने से ऊपर वाले सामन्त (सेन्योर) से प्राप्त करता था। सबसे ऊँचे ओहदे वाले सेन्योर को अपनी माफी राजा से मिली होती थी। बदले मे भू-पति के लिए यह आवश्यक था कि जब भी उसका सामन्त उचित समझे वह घोड़े और जिरह-बख्तर के साथ पूरी तरह से लैस होकर हाजिर हो। इस प्रकार वह अपने से ऊँचे सामन्त का मातहत या सेवक होता था और उसके प्रति सैनिक सेवा के अलावा उसके कई अन्य दायित्व भी होते थे—उसे अपने सामन्त के बन्दी बना लिए जाने की हालत मे उसकी रिहाई के लिए मुक्ति-धन का कुछ हिस्सा देना होता था।

सामन्त के बुजुर्ग को 'नाइट' (सैनिक सरदार) के रूप मे क्रमोन्नत करने और उसकी बेटी की शादी के समय नजराना देना पडता था। अधीनस्थ सामन्त द्वारा मामूली-सी चूक करने पर बडे सामन्त को उसकी जागीर वापस लेने का अधिकार प्राप्त था।

सामन्ती जागीर का एक भाग उसकी स्वय की भूमि' (डोमेन) कहलाता था तो दूसरा भाग भू-दास को काश्त के लिए दिया हुआ होता था। भू-दास के पास एक छोटा टुकडा होता था। मेहनत की बडी उपज करके जो सामन्त को देनी होती थी उसके बाद वह अतिरिक्त मेहनत करके जो पैदा करता था उससे अपने परिवार का भरण-पोषण करता था।

सामन्ती व्यवस्था दासप्रथा से इस बात मे भिन्न थी कि भू-दास अपनी जमीन पर स्वतन्त्र होकर काम कर सकता था, परिवार रख सकता था, जबकि दास से मार-पीट कर खेती करवाई जाती थी और उसे परिवार रखने की कोई छूट नही थी।

जैसे-जैसे सामन्ती जागीरो का विस्तार होता गया वैसे-वैसे ही जमीन पाने के बाद राजाओ के अनुचरो ने और धनी बन जाने तथा पहले के स्वतन्त्र छोटे किसानो को अपने सरक्षण मे लेने मे सफलता हासिल कर ली। उसके बाद उन स्थानीय अमीरो ने कानून और व्यवस्था का उल्लघन होने पर स्थानीय आम लोगो की सुनवाई करने और उन्हे दण्ड देने का अधिकार भी धारण कर लिया। उन्होने सशस्त्र दलो को भरती करना चालू कर दिया। उस तरह इन माफिया सामन्ती जागीरदारो ने सशस्त्र शक्तिबल हथियाने, दण्ड-विधान हाथ मे लेने अनुचरो को माफ करके उन्हे छोटे सामन्त बनाने और राजा को नुमायशी शासक बना कर हाशिये मे धकेलते जाने की सुदीर्घ प्रक्रिया से उसे नखदन्तहीन सिह'-सा कर दिया। राजा मे सामन्तो की शक्ति का मुकाबला करने की क्षमता नही रही।

राजा या सामन्त की कोई भी शासन-व्यवस्था हो वह तब तक पूरी तरह आशकाओ से रहित नही हो सकती थी जब तक वह जनसाधारण मे व्याप्त आस्थाओ और अन्धविश्वासो को अपने पक्ष मे न कर ले। इसके लिए धार्मिक सस्थाओ के लिए अनेक सुविधाएँ देनी पडती हैं। यूरोप के सामन्ती शासको ने भी येन-केन प्रकार से चर्चो के धर्माधिकारियो को अपने पक्ष मे कर लिया।

चर्च की शिक्षा थी कि ससार को दयालु परमेश्वर ने पैदा किया है। यदि

इस दुनिया मे कुछ लोग धनवान हैं और कुछ निर्धन, कुछ राजा या सामन्त हैं तो कुछ उनके आज्ञापालक कुछ शासक हैं तो दूसरे शासित—तो यह सब उस ईश्वरीय विधान (बाइबिल) के अनुसार ही है और जो व्यक्ति ईश्वरीय विधान का विरोध करता है वह पाप का भागी है, दण्डनीय है। अत हरेक मेहनत करने वाले को बिना हीला–हवाला किए अपने कर्तव्या का पालन करना चाहिए। ईमानदारी के साथ अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। चूँकि सामन्ती व्यवस्था मे बहुसख्यक किसान ही थे, जो स्वभाव से ही अन्धविश्वासी थे और चर्च द्वारा दी गई शिक्षाओ मे पूरी तरह आस्था रखते थे। किसानों के लिए चर्च के उपदेश ईश्वर के द्वारा भेजी गई हिदायते हैं जिन पर किसी प्रकार का शक नही करना चाहिए।

सामन्त लोग कैथोलिक चर्च की उपयोगी भूमिका की बहुत सराहना करते थे और किसानो और दस्तकारा की कमरतोड मेहनत से पैदा की गई कमाई का हथिया कर खुले हाथो से चर्च को दान मे दे देते थे। इसके अलावा वे चर्च को जमीने भी अनुदानित करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि थोडे-से समय मे ही चर्च बडी–बडी जमीनो का मालिक हो गया और उसके शीर्ष अधिकारियो को शासक वर्ग के प्रभावशाली सदस्यो मे बराबरी का स्थान प्राप्त हो गया। बड़े–बडे मठो के मठाधीश और धर्माधिकारी (बिशप) ड्यूको और काउण्टो जैसे प्रमुख अभिजातो के समकक्ष माने जाने लगे।

रोम के धर्माध्यक्षो को जो पोप कहलाने लगे थे, अपने धार्मिक कार्यो के अलावा प्रशासनिक काम भी करने पडते थे और यहाँ तक कि स्थानीय आबादी के सरक्षक के रूप मे भी उन्हे सशस्त्र दल रखने पडते थे। यही वजह थी कि पोप के पास एक पूरी सत्ता थी और उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ गई थी कि वह जल्दी ही सारे ईसाई विश्व के आध्यात्मिक नेतृत्व का दावेदार हो गया।

यूरोप मे धर्म, समाज सत्ता और राजनीति पर पोप व पादरियो का जितना प्रभाव कायम हुआ उसकी तुलना मे अन्य किसी धर्म के अधिकारियो के प्रभाव को नहीं रखा जा सकता। इतिहास मे उसने सत्ता–परिवर्तनो मे जो भूमिका अदा की वह अन्यो की अपेक्षा काफी भारी साबित हुई है।

पन्द्रहवीं–सोलहवी सदी तक फ्रास इग्लैण्ड तथा इटली आदि सभी बड़े–बड़े नगरराज्यो मे सामन्तवाद का भरपूर विकास हो चुका था। इससे नगरीय विकास उद्योग तथा व्यापार के विकास ने उसकी सुदृढ़ता मे महत्त्वपूर्ण योगदान किया। साथ ही सामन्तो और व्यापारियो के बीच अन्तर्विरोध भी स्पष्टतर होने लगे थे।

अपने विकास के साथ शहरी उद्योग कृषि के लिए भी पर्याप्त मात्रा मे लोहे के औजार प्रदान करने लगा जिन्हे अब छोटी-से-छोटी जोतो पर भी उपयोग मे लिया जाने लगा था। इस अरसे मे पशुपालन, खेती तथा बागवानी मे भी उन्नत तकनीक अपनाई जाने लगी। नगर औद्योगिक केन्द्र के रूप मे विकास करने लगे। यहाँ से वस्त्र ऊन, रेशम सूती कपडा, चमडा उद्योग, धातु के काम कॉच मिट्टी के बर्तन तैयार करने का व्यापक रूप से निर्यात होने लगा।

यूरोपीय नगरो के विकास ने उत्पादक शक्तियो की उन्नति और राजनीतिक और सामाजिक विकास मे भी निर्णायक भूमिका अदा की। सामन्त व्यापारियो की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मे जहाँ टाँग अडाने लगते वहाँ दोनो मे सघर्ष की स्थितियाँ भी पैदा हो जाती थी। नगरो मे उद्योगो के विकसित होने से बाजार का विकसित होना स्वाभाविक ही था।

एक आश्चर्यजनक परिणाम यह भी पैदा हुआ कि नगरवासी राजाओ और सामन्तो के आपसी झगडो से इतने तग आ गए थे कि वे एक मजबूत केन्द्रीकृत व्यवस्था चाहते थे। इसके लिए यूरोपीय राजाओ और नगरवासियो के बीच स्वत स्फूर्त सम्बन्ध स्थापित हो गए थे। लेकिन खुशामद पसन्द राजा यह नही समझ पा रहे थे कि जिन सामन्तो को उन्होने बडी-बडी जमीने कर उगाहने की छूट और शस्त्र दिए वे ही उनकी जड काटने मे क्यो लगे थे। इतना ही नही धर्म भी अपना पासा पलट रहा है।

चर्च धर्मयुद्धो के वाहक बने।

इग्लैण्ड मे ससद का आरम्भ हुआ। ससद मे सत्तावर्ग धार्मिक अधिकारी और लैण्ड लॉर्ड्स के प्रतिनिधि और सामान्य जनो के प्रतिनिधि शामिल थे। इसके बावजूद भी पोलटैक्स (व्यक्तिकर) नामक सार्विक कर लगाया गया था क्योकि फ्रास के विरुद्ध चल रहे (शतवर्षीय युद्ध) के लिए धन की आवश्यकता थी।

एक ओर रक्तरजित पारस्परिक युद्धो (जैसे शतवर्षीय गुलाबो की लडाइयाँ आदि) धर्मयुद्धो और किसान विद्रोहो का अटूट सिलसिला था तो साथ ही कृषि और उद्योगो का विकास सुधारो की हलचल और सामन्तवाद की चरम सीमा तक पहुँचाने और उत्पादन के भावी विकास को अवरुद्ध करने की क्रिया भी जारी थी। ऐसे मे उत्पादन के सम्बन्धो मे सक्रमण के बीज का अकुरित होना स्वाभाविक हो गया था।

सत्तरहवी सदी तक आते-आते सामन्ती उत्पादन-सम्बन्धो मे पूँजीवादी

व्यवस्था के तत्वो का उदय होने के साथ-साथ पूँजीपतियो के वर्ग के नाते निम्न पूँजीपति वर्ग की सम्पदा और उसके प्रभाव मे भी वृद्धि होने लगी। जिन देशो म पूँजीवाद का विशेपकर तेजी के साथ विकास हुआ था, उनमें बुर्जुआ वर्ग की अब उस सरक्षण और सहायता से तुष्टि न हो पाती थी जा सामन्ती युग के निरकुश राजतन्त्र उसे पहले प्रदान किया करते थे। अब यह बुर्जुवा वर्ग सत्ता की आवश्यकता महसूस करने लगा ताकि राज्य के निग्रह या बलप्रयोग के समूचे तन्त्र का पूँजीवाद के हितो का साधन करने के वास्ते उपयोग कर सके और सामन्तो को, जिन्हे पूँजीपति परजीवी मानते थे, उस सत्ता से वंचित किया जा सके जिसका वे निरकुश राजतन्त्र वाले देशो मे शासक वर्ग के अग होने की हैसियत से उपयोग किया करते थे।

इस प्रकार जिस पिरामिड के शीर्ष पर निरकुश राजतन्त्रीय सम्राट् और उसको उल्लू बना कर उसका लाभ उठाने वाले जागीरी राजा थे—उनकी नीव हिल चुकी थी। वे अल्पावधि के बाद ही धूलि-धूसरित हो गए थे। न उनको उनकी सेना बचा सकी न धर्म या कोई अज्ञेय शक्ति। नई व्यवस्था ने सामन्ती प्रथा को यूरोप के इतिहास के पीछे के अध्याय मे धकेल दिया।

एशियाई सामन्तवाद

भारत—छठी से बारहवी सदी तक भारत मे सामन्तवाद के विकास का पहला सोपान था, तो तेरहवी सदी से सोलहवी सदी तक दूसरा सोपान। यूरोप के सामन्तवाद से भारत के सामन्तवाद मे कुछ ऐसी भिन्नताएँ हैं जिन्हे यहाँ की विशिष्ट राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे ही समझा जा सकता है। पश्चिमी यूरोप मे दास को बिना श्रम—मजदूरी के अपने भू-मालिक की जमीन पर बेगार करनी पड़ती थी जिसकी एवज मे उसे जमीन का एक टुकडा दे दिया जाता था। उस जमीन पर वह अपनी झोपडी बना कर बेगार करने के बाद बचे समय मे थोडी-बहुत खेती कर लेता था। किन्तु भारतीय सामन्तवाद मे किसान पर ऐसी पाबन्दी नही थी। यहाँ बेगार की अनिवार्यता से सामन्तवाद का विकास नही हुआ था।

भारतीय सामन्तवाद के अपने विशिष्ट लक्षण थे—भूमि पर राजकीय स्वामित्व युगो पुराने स्वायत्त ग्राम समुदाय कृषि और दस्तकारी का एक-दूसरे से घुले-मिले होना बिरादरी के कबीली सम्बन्धो या गणचिह्नो का जारी रहना वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत जातिप्रथा और अस्पृश्यता का विकास और इस सबके साथ-साथ दास-प्रथा के अवशेषो और यहाँ तक कि आदिम साम्यवाद के अवशेपो का भी जारी रहना आदि।

मध्ययुगीन भारत मे तीन प्रकार की जीवन प्रणालियाँ थी—सामन्त अथवा देवस्थान का परिसर, ग्राम समुदाय और नगर।

राज्यसत्ता मे हिन्दू धर्म या ब्राहाणवाद और बौद्धवाद का द्वन्द्व भी परिलक्षित होता रहा है।

सातवीं से बारहवीं सदी के बीच गौड मौखरी चालुक्य चोल हर्षवर्धन पल्लव पाण्ड्य आदि सत्ताधारियो के साम्राज्य थे। मठो, मन्दिरो का वर्चस्व सत्ता मे व्यापक स्तर पर था। धर्माधिकारी राजा या उसके समकक्ष मान्यता प्राप्त थे। पाल शासको और गुर्जर–प्रतिहारो का दबदबा था।

तेरहवी सदी के आरम्भ मे दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई। राजपूत राजाओ की पराजय के बाद गुलाम वश खिलजी वश तुगलक वश सैयद वश लोदी वश और फिर सोलहवी से अठारहवी सदी तक मुगलो का शासन रहा।

सामन्तवाद के उद्‌भव और विकास के साथ ही साहित्य कला वास्तुशिल्प और विज्ञान मे तेजी से उन्नति हुई। अजन्ता और एलोरा की सुन्दर चित्रकारी और खुदाई वाले भव्य मन्दिर तथा ईटो और पत्थरो से बने गोपुर–आकार वाले मन्दिर तत्कालीन कलाकारो के कला–सौन्दर्यबोध का प्रमाण देते हैं।

इसी काल मे गणित और ज्योतिष के क्षेत्र मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किए गए। सस्कृत मे महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचनाएँ हुईं और आगे चल कर भक्तिकाल के कवियो ने ब्रज अवधी तथा अनेक क्षेत्रो की लोक–वाणियो मे महाकाव्य गीतिकाव्य, खण्डकाव्य और फुटकर रचनाएँ सृजित कर साहित्यिक भण्डार को समृद्ध किया। कवियो और गायको मे सभी वर्णो और जातियो के सर्जक थे। इनमे पुरुष भी थे तो महिलाएँ भी। इनमे जातिगत भेदभाव नहीं था। इनमे न तो राजाओ और सामन्तो के खुशामदी थे और न ही उनके पैसो या कृपानुदान को स्वीकार करने वाले लोग। उन्होने सामन्तो के मुकाबले मे निर्गुण–सगुण ईश्वर को ला खडा किया था। ये अपनी मेहनत से या जनसाधारण से सहायता प्राप्त कर अपना और परिवार का पालन–पोषण करते थे। यह एक प्रकार का वैचारिक सघर्ष था जबकि किसान और दस्तकारो ने सामन्तवाद के खिलाफ लगातार दीर्घकालीन आन्दोलन छेड रखे थे जिनका बहुत लम्बा इतिहास है।

चीन—पूर्वी दक्षिण–पूर्वी तथा दक्षिणी एशिया के देशो मे चीन मे सामन्ती सम्बन्धो का उदय तीसरी सदी मे उस समय हुआ जब दासप्रथा के

विघटन के परिणामस्वरूप हान साम्राज्य का पतन हो गया और उसके प्रदेश पर वेई राज्य स्थापित हो गया, इसके साथ वू तथा शू राज्यो के केन्द्र अस्तित्व म आ गए। उत्तर मे हिसन राज्य मे इसी काल मे सामन्ती शोषण का आरम्भ हुआ। चीन का भू-पति अपनी सम्पत्ति किसानो मे बाँट कर उसके बदले मे उनसे कर लेने सैनिक सेवा लेने और राजकीय निर्माण कार्यों मे मेहनत करवाने को मजबूर करता था।

आगे कई सदियो तक चीन मे उथल-पुथल के साथ सामन्ती क्षेत्र और सामन्ती शोषण का विस्तार होता गया। छठी सदी मे उत्तरी राज्य ने दक्षिणी राज्य को अपने अधीन कर लिया। सातवीं सदी मे सुई राजवश के विजय अभियान चले। सुई राजवश के पश्चात् सातवी से दसवी सदी के आरम्भ तक ताग राजवशो के राजाओ ने शोषण के कई नये तरीके पैदा कर दिए। किन्तु कुछ सुविधाएँ और सुधार भी पैदा किए जिनसे एक जटिल बहुविध प्रशासन तन्त्र विकसित हो गया।

नौवी सदी मे ताग वश के शासनकाल मे सामन्ती नौकरशाही के साथ-साथ भूस्वामी सामन्त वर्ग भी किसानो का क्रूरतम शोषण करता था। उधर किसाना और पराजित जातियो मे भी अनेक विद्रोह फूट पडे। ई 881 मे हुआँग चाओ के नेतृत्व मे विद्रोहियो ने राजधानी चागआन पर कब्जा कर लिया यद्यपि बाद मे इसे कुचल दिया गया।

सातवीं से नौवी सदी मे चीन मे जबरदस्त सास्कृतिक विकास हुआ। इस जमाने मे बारूद का ईजाद किया गया कागज और चीनी मिट्टी की चीजे बनाने के तरीको म नए-नए तरीके खोज निकाले गए तथा लकडी के ठप्पो से छपाई का काम शुरु किया गया। शिक्षा और साहित्य में भी अभूतपूर्व विकास हुआ। गणित खगोल और भौतिकी मे खोजे होने लगी। ली पो, तू फू और पो च्यू ई जैसे प्रसिद्ध रचनाकारा ने अमूल्य साहित्यिक रचनाएँ दीं। चित्र और मूर्ति कलाएँ भी नयी शैलियों मे परिष्कृत की गईं।

दसवी से तेरहवी सदी मे चाओ कुआग यिन ने सुग राजवश की स्थापना की। किन्तु आपसी प्रतिस्पर्द्धाओ और लगातार के युद्धो के कारण सामन्तो की शक्ति बढ़ती गई। सामन्त बेकाबू हो गए। उधर मगोल के चगेज खाँ ने सैन्यबल सुदृढ कर चीन का दबा लिया। उसने कई इलाके अपने कब्जे में कर लिए। लूट-मार और सामन्ती शोषण से जनता भयकर सकटा स त्रस्त होने लगी।

सोलहवीं और सत्रहवीं सदियो मे तो चीन मे एक ओर यूरोपियनो का प्रवेश होने लगा। उत्तर से मगोल हमले कर रहे थे तो पूर्व से जापानियो ने

आक्रमण किए। फिर उत्तर-पूर्व से मचूरियो ने चीन पर हमले करने शुरू कर दिए।

भयकर हमलो और सामन्तो के अत्याचारो के विरुद्ध किसानो के बढते हुए विद्रोहो ने बडे पैमाने पर युद्धो का रूप ले लिया। सन् 1639 मे ली त्जू-च्यग के नेतृत्व मे बागियो ने शाही सेना को परास्त कर दिया और राजधानी पर कब्जा कर लिया और ली त्जू-च्येग को अपना सम्राट् घोषित कर दिया।

अन्तत सन् 1639-1644 के विद्रोह के परिणामस्वरूप सैनिक तथा असैनिक दोनो ही मामलो के लिए एक केन्द्रीकृत प्रशासन की व्यवस्था की स्थापना कर दी गई और कृषक शासन ने देश के अर्थतन्त्र का नियमन करने के प्रयास किए। किन्तु चीनी सामन्तो ने मचूरियो के साथ मिल कर किसानो के साथ विश्वासघात किया और सयुक्त प्रशासन को कुचल दिया।

कोरिया—यहा कोगूयो, पैक्चे तथा सिल्ला राज्यो के ढॉचे के भीतर सामन्ती व्यवस्था विकसित हुई। इन राज्यो मे सत्ता भू-मालिक अभिजात वर्ग के हाथ मे थी। किसान मुख्य उत्पादक थे जो सीधे सामन्ती सत्ता के अधिकारियो के अधीन थे। शुरू मे कोरिया मे कनफ्यूशस मत प्रचलित था, बाद मे उसका स्थान बौद्ध धर्म ने ले लिया। छठी सदी मे यहाँ कई बार चीनी हमले हुए किन्तु वह आठवी सदी मे सिला राज्य के नेतृत्व मे फिर एकीकृत हो गया।

कोरिया मे स्वतन्त्र किसानो के दो प्रकार के समूह थे—स्वतन्त्र किसान और अलग-अलग जमीदारो या राज्य की सेवा के लिए अनुबन्धित किए गए किसान। पहले प्रकार के किसानो के शोषण के मुख्य रूप लगान और बेगार तथा सैनिक सेवा थे दूसरे प्रकार के किसान आमतौर पर शक्तिशाली जमींदारो अथवा स्वय सम्राट् की सेवा करने वाले अनुबन्धित काश्तकार थे।

ग्यारहवी-बारहवीं सदियो मे बड़े पैमाने पर शहरो का प्रसार और शिल्पो और उद्योगो का प्रसार हुआ। इसी काल मे चीन के साथ सास्कृतिक सम्बन्धो, चीनी विज्ञान कला और साहित्य ने कोरिया की सस्कृति पर चहुँमुखी प्रभाव पैदा किया।

जापान—यहाँ वर्ग समाज का उदय अधिकाशत एशियाई राज्यो मे सामन्ती स्वरूपो की ओर सक्रमण के साथ ही हुआ। नवोदित जापानी वर्ग समाज इण्डोनेशियाई तथा अन्य वर्गीय समाजो की भाँति बिल्कुल आरम्भ से ही

सामन्ती विकास के मार्ग की ओर अग्रसर हुआ। यहाँ दासप्रथा ने कभी जडें नही जमायीं।

सामन्ती सम्बन्धो के अन्तर्गत नगरो का समुचित विकास हुआ और शिल्प और उद्योग तेजी से फैलने लगे। सोगा शासन के समय शोषक वर्ग ने जिसे शितो धर्म की अपेक्षा वर्ग समाज के अनुकूल धर्म की आवश्यकता थी बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन दिया। केन्द्रीकृत राज्यसत्ता के सुदृढीकरण के साथ-साथ बौद्ध विहार (मठ) वड़ी-वड़ी जमींदारियाँ हासिल करते जा रहे थे, जिन्हे सामन्ती आधार पर सगठित किया जा रहा था।

बारहवी सदी के मध्य मे जापान मे भू-स्वामियो के तीन समूह थे---उत्तर मे समुराई और उनके सामन्त (मीनामोतो कुल), दक्षिण मे, जहाँ समुराई कमजोर थे बडी-बड़ी जागीरो के स्वामी (ताइरा कुल) और राजधानी के भू-स्वामी राज्याधिकारी, जो सम्राट् के सीगे मे आते थे (फूजीवारा कुल)। तीनो के सघर्ष मे सामाजिक विकास की दृष्टि से अधिक उन्नत उत्तर के समुराई की विजय हुई, जहाँ छोटी जागीरो की प्रधानता थी।

इसी काल मे जापान के नगर व्यापार, शिल्पो के उद्योगो के विकास क एक ऊँचे स्तर पर पहुँच गये। देश-भर मे श्रेणियाँ (गिल्ड) पैदा हो गईं। छोटी और मँझोली समुराई जागीरो की प्रधानता के कारण अनेक आर्थिक केन्द्रो का उदय हुआ जिनमे से प्रत्येक मे कई बड़े-बड़े शहर थे। इस विशेषता ने जापान को एशिया के अन्य लाक्षणिक सामन्ती राज्यो से अलग कर दिया, जिनमे राजधानी तो बहुत बडी हुआ करती थी, लेकिन उसके अलावा छोट-छोटे प्रान्तीय कस्बे ही हुआ करते थे। आन्तरिक और---कुछ हद तक---विदेशी व्यापार की वृद्धि के फलस्वरूप व्यापारियो और मालवाहको के बडे-बडे समूह पैदा हो गए।

आन्तरिक और विदेशी व्यापार ने बारहवी सदी और उसके बाद के अरसे मे जापान आर्थिक और सास्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त विकसित सामन्ती राज्य था। उसके सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन के कई पहलुओ पर चीन का गहरा प्रभाव था, साथ ही अन्यो का भी असर दिखाई दे रहा था।

दक्षिण-पूर्वी एशिया के अन्य देश---खेती के तरीको के विकास और भारत के साथ व्यापार के फैलाव के साथ दक्षिण-पूर्व के एशिया के देशो ने इकट्ठे होकर सामन्ती राज्यो का निर्माण कर लिया था। इनमे सबसे बडे ख्मेरो का फूनान साम्राज्य पश्चिमी इण्डोनेशिया का श्रीविजय साम्राज्य और मध्य

वियतनाम का चम्पा राज्य था। जैसे-जैसे खेती का विकास होता गया और समुद्री व्यापार धीरे-धीरे अरबो के कब्जे मे आता गया वैसे-वैसे ही दक्षिण-पूर्वी एशिया के राज्यो मे शक्तिशाली जमीदार अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगे। हिन्दचीन मे मध्य युग के आरम्भ मे राजकीय भू-स्वामित्व की प्रधानता थी और उसके तत्त्व इण्डोनेशिया मे भी देखे जा सकते थे। इसके फलस्वरूप उत्पन्न सैन्य तथा प्रशासनिक अभिजात वर्ग ने सत्ता के लिए पुराने वश-परम्परागत उत्पन्न अभिजात वर्ग के साथ सघर्ष करना शुरू कर दिया। वियतनाम मे चीनी अभिजात वर्ग के साथ इसी तरह का सघर्ष हुआ।

नौवी सदी मे कम्पूचिया मे दसवी मे वियतनाम मे ग्यारहवी मे इण्डोनेशिया तथा बर्मा मे और तेरहवी सदी मे स्याम मे उन्नत सामन्ती राज्य स्थापित हो चुके थे। इन राज्यो मे अर्थतन्त्र जमीन के लगान और सामुदायिक किसानो द्वारा अनिवार्य सेवा पर आधारित था। व्यापारी साम्राज्य धीरे-धीरे कमजोर होकर छिन्न-भिन्न हो गए। इनमे से प्रत्येक राज्य मे छोटे-छोटे और मँझोले जमीदारो जो राजकीय भू-मालिको के समर्थक थे—उनमे और शक्तिशाली सामन्तो मे सत्ता के लिए सघर्ष होने लगे। लेकिन ये दोनो ही समूह सामुदायिक किसानो के हितो का विरोध करते थे जो धीरे-धीरे जमीन के साथ जुडते जा रहे थे।

बारहवी सदी तक इण्डोनेशिया मे बारोबुदा स्तूप कम्पूचिया मे अकोरवाट के मन्दिरो और बर्मा मे पगान के मन्दिरो जैसी वास्तुकला की उत्कृष्ट इमारतो का निर्माण किया गया। बौद्ध धर्म के विकास ने हिन्दू धर्म व अन्य धार्मिक सम्प्रदायो का स्थान ले लिया।

मध्यपूर्व और मध्य एशिया के देशो मे ईरान आर्थिक और राजनीतिक लिहाज से पश्चिमी एशिया का सबसे शक्तिशाली राज्य था। मुख्य सत्ता भू-स्वामियो और जरथुस्त्री पुरोहित वर्ग के हाथ मे थी। छठी सदी मे सम्राट् खुसरो प्रथम के शासनकाल मे अभिजात वर्ग पर विजय प्राप्त करने से केन्द्रीय सरकार को और भी बड़ी-बडी जमीने मिल गई और जमीन पर राजकीय स्वामित्व की पुन प्राप्ति के कारण उनका काफी बड़ा भाग भाजातो (सैन्यकर्मियो) को दे दिया गया।

सामन्ती सम्बन्धो के सुदृढीकरण और किसानो के विद्रोहो के दमन के बाद ईरानी पश्चिम की ओर बढे। वहाँ कुछ सफलताएँ भी मिली लेकिन कुछ ही समय बाद ईरान वैजन्तिया के साथ एक लम्बे और महँगे युद्ध मे बुरी तरह फँसता चला गया।

छठी-सातवीं सदी मे इस्लाम का आरम्भ हुआ। एकेश्वरवादी (अल्लाह) धर्म के पैगम्बर हजरत मुहम्मद (570-632) के अनुयायियो ने उनके आदेशानुसार दासप्रथा की आलोचना करके विभिन्न सामाजिक घटकों मे एकता कायम की। लेकिन हजरत अली (602-661) के नेतृत्व में स्व अरब अभिजात वर्ग के खिलाफ खड़ी हो गई, जिसने बेशुमार जमीनो पर कब्जा कर लिया। सन् 656 मे अली खलीफा बन गया। इसके खिलाफ अभिजात वर्ग फिर एकजुट हो गए। इससे धार्मिक अन्तर्विरोध तीक्ष्णतम हो गए। अली के समर्थको ने शिया पन्थ बना लिया। मुआविया समर्थको ने सुन्नी पन्थ। सुन्नी पन्थ सुन्नत पर आधारित था जबकि शिया हजरत अली के उत्तराधिकारियों को दीनदारो का आध्यात्मिक नेता मानते थे। सुन्नी कुरान के बाद मे उदित हुआ। दोनो का विवाद अब तक चला आ रहा है। मदीना मे मुस्लिम राज्य ने शीघ्र ही केन्द्रीकृत धर्मतन्त्र को 'सैन्यबल' से जोड़ दिया। पैगम्बर के उत्तराधिकारी खलीफाओ के समर्थन से केन्द्रीय सत्ता के सुदृढ़ीकरण का मार्ग प्रशस्त हो गया।

सातवी सदी के उत्तरार्द्ध मे अरबो ने ईरान को जीत लिया। अरबो की सफलताओ मे उम्मैयावश की खिलाफती केन्द्र और उसके बाद अब्बासीवशीय खिलाफत का योगदान था।

लेकिन खिलाफत को राज्यतन्त्र की अक्षमता और अदक्षता के कारण सूबेदारो को व्यापक अधिकार और सत्ता सौंपने के लिए विवश होना पडा। इससे खिलाफत का ह्रास होने लगा।

आठवी से दसवी सदी के दौरान अरबो ने सास्कृतिक गतिविधियां विज्ञान और प्राचीन विरासत को सरक्षित और सवर्धित करने मे बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

रूस—यूरेशिया के सगम रूस को काफी अरसे तक मगोलो और तातारो के हमलो से न केवल लगातार पराजयो का सामना करना पडा, अपितु उसके कई शहरो और गाँवो को जला डाला गया। फिर कालान्तर मे जब रूस म ईसाई धर्म को मान्यता मिली और मास्को का पुनरोदय हुआ तो स्वतन्त्र मास्को का पहला राजा अलेक्सान्द्र नेव्स्की का पुत्र दानिईल अलेक्सान्द्रोविच (1261-1303 ई) बना। उसने रियाजान के राजाओ से कोलोम्नानगर छीन कर अपने राज्य का विस्तार किया। इसके बाद उसके बेटे ने चौदहवी सदी मे सम्पूर्ण मास्को पर कब्जा कर लिया। कुछ ही समय बाद इवान प्रथम ने 1340 ई तक मास्को पर शासन किया। तातारो ने एक बार फिर रूस की

ओर रुख किया लेकिन उन्हे मात खानी पडी। जब इवान कलीता को रूस का राजा बनाया गया उसने अपने शासनकाल मे मास्को राज्य की शक्ति मे अभूतपूर्व वृद्धि की। मास्को एक खुशहाल और खूबसूरत शहर बन गया।

इवान तृतीय के शासनकाल (1462–1505 ई) मे मास्को के अधीन रूसी प्रदेशो के एकीकरण मे विशेष सफलता हासिल की गई। रूसी राज्यो के एकीकरण का प्रमुख कारक होने का श्रेय वहॉ की मेहनतकश जनता की ऊर्जा और उसकी लगन को ही जाता है। इसकी बदौलत रूस के लिए तातारो के विनाश से सॅभलना और खॅडहरो पर खडे शहरो और गॉवो को फिर से खडा करना सम्भव हो सका। छोडे हुए खेतो को फिर से जोता जाने लगा और नयी जमीनो को काश्त के दायरे मे लाया जाने लगा। श्रम उद्योग और लगन ने विदेशी शासको का मुकाबला कर उन्हे शिकस्त देने की क्षमताऍ पैदा की। देश की अर्थव्यवस्था को बहाल और मजबूत करके जनता ने सामन्ती राज्यो मे बिखरे देश के एकीकरण के मार्ग को प्रशस्त कर दिया।

तातार–मगोलो के आधिपत्य को पूरी तरह समाप्त कर 1480 ई मे रूस पूरी तरह स्वतन्त्र हो गया। इवान तृतीय ने मास्को को और भी अधिक सुन्दर बना दिया। यहॉ पत्थर का एक नया महल बनाया गया और क्रेमलिन के चारो ओर पत्थर की मोटी दीवारे खडी की गई। उसने विख्यात इतालवी वास्तुकार आरिस्टोटल फीएरॉवाती को बुला कर पचगुम्बदी गिरजाघर का निर्माण करवाया।

जैसे रोमन सम्राट् अपने नाम के साथ 'सीजर' की उपाधि लगाया करते थे इवान तृतीय ने भी अपने नाम के साथ जार' की उपाधि लगा ली जो सीजर का रूसी रूपान्तर था। इवान तृतीय तो मास्को का पहला जार था लेकिन उस्पेन्स्की गिरजाघर मे पूरी शान–शौकत और विधि–विधान से अपना राज्याभिषेक करने वाला और अपने को सारे रूस का जार' घोषित करने वाला पहला राजा उसका पोता इवान प्रचण्ड (1530–1584 ई) था।

सदियो तक रूस के किसान, दस्तकार श्रमिक व आम लोग जारशाही के द्वारा असह्य कष्ट झेलते रहे, उन्होने अनेकानेक विद्रोह भी किए किन्तु राजकीय ताकत ने उन्हे कुचले रखा। दुनिया के उत्पीडक शासको की उच्चस्थ श्रेणी मे जारशाही भी शामिल थी।

लेकिन उन्नीसवी सदी और बीसवीं सदी के सन्धिकाल मे मेहनतकश जनता के लगातार जुझारू सघर्षो और औद्योगिक विकास ने सामन्ती शक्तियो

को इतना कमजोर कर दिया था कि वे स्वय अपने तौर-तरीको से ही मात खाने लगी। देशी और विदेशी ताकतो के जबरदस्त दबावो ने अन्य सामन्तशाहियो की तरह रूस की जारशाही को भी मौत की ओर धकेल दिया।

सामन्तीकाल मे उपनिवेशित अमरीका

पृष्ठभूमि—सबसे पहले तो इस भ्रम को दूर कर देना होगा कि कोलम्बस व दूसरे यूरोपियनो के पहुँचने से पहले अमेरिका सिर्फ एक वहशी लोगो का क्षेत्र था। क्योकि पाषाण युग मे भी उत्तरी अमरीका और एशिया के बीच एक सूखा रास्ता था। कितने ही शिकारी और कबीले अलास्का होकर एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप मे आते-जाते रहते थे। बाद मे आवागमन का मार्ग कट गया और अमेरिका के लोगो ने धीरे-धीरे अपनी खुद की सभ्यता बना ली। बाद मे दोनो महाद्वीपो को जोडने का कोई साधन नही रहा। सोलहवी सदी तक अमरीका से सम्पर्क सूत्र टूटा हुआ ही रहा।

अमेरिका मे सभ्यता के तीन केन्द्र थे—मैक्सिको मध्य अमेरिका और पेरू। मैक्सिको का पचाग लगभग ईसापूर्व 613 से आरम्भ होता है। ईसा की दूसरी सदी तक तो वहाँ बहुत-से शहर कायम हो चुके थे। पत्थर का काम, मिट्टी के बर्तनो का बनाना बुनाई और बहुत सुन्दर रँगाई के काम होते थे। ताँबा और सोना बहुतायत मे उपलब्ध था, लेकिन लोहा नही था। साहित्य भवन निर्माण मूर्तिकला और दस्तकारियो का विकास हुआ। ऊश्माल एक बहुत शानदार नगर था। मध्य अमेरिका मे मयपान सभ्यता ने महत्त्वपूर्ण तरक्की की। फिर अजटेकों ने मयपान को बर्बाद कर दिया। फिर कोर्तीज ने अजटेक शासन का अन्त कर दिया। लेकिन साथ ही मैक्सिको की सभ्यता भी लडखड़ा गई।

दक्षिणी अमेरिका मे पेरू मे सभ्यता का एक और केन्द्र था। इसमे 'इन्का' का शासन था। 1530 ई मे स्पेनवासी पिजारो ने इन्का को धोखेबाजी करके पकड लिया और पेरू राज्य का अन्त कर दिया। मय और पेरू की कला की निशानियाँ मैक्सिको के अजायबघर मे रखी हुई हैं।

सोलहवीं सदी के शुरू मे कोलम्बस और दूसरे समुद्र यात्रियो ने अमरीकी क्षेत्र में प्रवेश किया। सोना प्राप्त करने की अदम्य लालसा ने स्पेन और पुर्तगाल के जाँबाजो अभिजातो भाड़े के सैनिको और अपराधियो ने मिल कर छल-कपट और जोर-जबरदस्ती से अमरीका के स्थानीय निवासियो के इलाको को हथिया लिया और उन्हे स्पेनी और पुर्तगाली देश घोषित कर दिया। कोर्कीस्तायेर इण्डियनो (अमरिकनो के मूल निवासियों) को लूटते-

खसोटते और दास बनाते थे और उनका शोषण करते थे। प्रतिशोध के हर प्रयास को निर्ममतापूर्वक कुचल दिया जाता था। पूरे के पूरे शहरो और गाँवो को पाशविक निर्दयता के साथ बर्बाद कर दिया गया। कार्ल मार्क्स के अनुसार— लूटमार और हिसा ही अमरीका मे स्पेनी जॉबाजो का एकमात्र लक्ष्य था।'

पोस दा लीओन ने फ्लोरिडा प्रायद्वीप को खोजा जो उत्तरी अमरीका मे पहला स्पेनी प्रदेश घोषित कर दिया गया था। 1521 ई मे हेरनान्दो कोर्तेस ने तीन साल के युद्ध के बाद अन्तत मैक्सिको को जीत लिया और अजटेको की प्राचीन सस्कृति और उनकी राजधानी तोनोत्चीत्लान को पूर्णत ध्वस्त कर दिया। बहुत-से यूरोपियनो ने दक्षिणी अमरीका के उत्तरी भाग पर भी कब्जा कर लिया। उधर फान स्पेयर तथा फेयरमान के नेतृत्व मे भाडे के जर्मन सैनिको के दस्ते सोलहवी सदी के चौथे दशक मे ओरीनीको और मैदालेन नदियो मे जा घुसे।

दूसरी ओर अग्रेज फ्रासीसी और डच भी इस नयी दुनिया के विराट् और समृद्ध प्रदेशो के दावेदार बनने को बेचैन हो गये थे अत वे भी दक्षिणी और मध्य अमेरिका और वेस्टइण्डीज के इलाके हथियाने मे कामयाब हो गए।

इस तरह सोलहवी सदी मे अमरीकी जनगण के स्वाभाविक विकास के क्रम को बलपूर्वक ध्वस्त कर उसे अपना सामन्ती उपनिवेश बना डाला।

सामन्तवाद का सरचनात्मक पिरामिड—

1 एक अदृश्य शक्ति ईश्वर, अल्लाह, परमपिता

2 दृष्टव्य शिखर अवतार, पैगम्बर मसीहा आदि

3 भूधर सम्राट् बादशाह

4 सिहासीन रियासती राजा महाराजा

5 पहाड़ियाँ

(क) सामन्त जागीरदार

(ख) मठाधीश पुरोहित, पादरी धर्माधिकारी धार्मिक जागीरदार ब्राह्मण-क्षत्रिय

(ग) प्रशासनिक अधिकारी राज्य कर्मचारी, पुलिस, सैनिक

(घ) बुद्धिजीवी

6 सतह उत्पादक किसान, दस्तकार श्रमजीवी

7 नीव मे दबे नारी दलित वर्ग अधिकार-वचित सर्वहारा

लक्षण—

1 सामन्ती व्यवस्था मे 'राष्ट्रीयता' 'राष्ट्रवाद', मातृभूमि' 'पितृभूमि' की भावना अथवा आवेगपूर्ण भावुकता नहीं थी।

2 सामन्ती प्रथा दासप्रथा की अपेक्षा इस अर्थ मे अधिक प्रगतिशील थी कि इसमे भू-दासो को दासो की तरह जकड़ कर मार-पीट कर और परिवार रहित रख कर कठोरतम मेहनत करने को विवश नही किया जाता था। इसमे किसान को जमीन के एक टुकड़े पर काम करने और परिवार पालने की छूट थी। उसे मालिक को बेगार और टैक्स अवश्य देना होता था।

3 हरेक अपने धर्म को दूसरे धर्म की अपेक्षा बेहतर मानता था। दूसरे धर्म के मानने वाले को काफिर कहते थे। लेकिन ये धारणाएँ काफी धुँधली थी। धार्मिक नेता के उभारने पर जुनून जरूर पैदा होता था।

4 सामन्ती प्रथा मे पिछले गणराज्यो की चुनाव प्रणाली को समाप्त कर दिया गया था। शासन-सत्ता पूरी तरह निरकुश थी।

5 जर्मनी मे तो आधी जमीन और सम्पत्ति बिशपो और ऐबटो के कब्जे मे थी। पोप खुद एक बडा सामन्ती सरदार था।

6 भारत की वर्ण-व्यवस्था सामन्ती प्रथा का ही अभिन्न अग थी। अस्पृश्यता और मैला ढोने की प्रथा की निरन्तरता तो आज तक कायम है। यहाँ तक कि वर्तमान कानून भी इसको जड से निर्मूल नहीं कर सके। सतीप्रथा और कन्या की भ्रूणहत्या या नवजात की हत्या सामन्ती प्रथा की ही देन थी।

7 ठकुरसुहाती भाटवाद शृगारिकता चरण सेविता और वीरगाथा साहित्य आदि इसी सामन्ती काल की देन है। यद्यपि इसने कुछ अश तक भाषा विकास मे अपनी भूमिका भी अदा की थी।

8 धार्मिक कर्मकाण्ड भूत-प्रेत आदि को लेकर अन्धविश्वासो को सर्वसाधारण के नित्यकर्म का अटूट हिस्सा बना देना इसी युग मे जोर पकडने लगा।

शासक वर्ग की चेतना

लूटो मारो काटो जला दो कुचल दो धोखा दो फूट डालो, मेरे जाँबाजो उत्तर से घुसो कि दक्षिण को हथिया लो, पूर्व को कब्जे करो, तो पश्चिम पर धावा बोल दो। सोना छीनो चाँदी छीनो ताँबा छीनो। तुम बहादुर

हो तुम वीर हो— वीर भोग्या वसुन्धरा', वहाँ देखो भाई-से-भाई भिड रहा है वहाँ जाओ एक को जोडो-दूसरे को तोडो इलाके पर चढ बैठो।'

इस प्रकार राजा या महाराजा (सम्राट्) का मुख्य सोच यह था कि येन-केन-प्रकारेण राज्य का क्षेत्र ज्यादा-से-ज्यादा कैसे बढाया जाय भौतिक सम्पत्ति का विस्तार कैसे किया जाय, अपनी निरकुशता को जारी रखने के लिए क्या उपाय किए जायँ तथा अपने और अपने परिवार द्वारा किए गए जघन्य अपराधो पर कैसे पर्दा डाला जाय। एकाध अपवाद को छोड कर बाकी सब राजा-महाराजा डकैती प्रवृत्ति के ही होते थे। मदमस्ती करना औरतो को अपहृत कर उनको अपने कब्जे मे रखना किसानो और दस्तकारो से तरह-तरह की बेगारे वसूलना चाटुकारो को मनमानी छूट देना और किसी प्रकार के विरोध को समूल नष्ट करना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। वह स्वय किसी प्रकार का उत्पादक श्रम नही किया करता था।

राजा स्वय को बतौर ईश्वर के अवतार के रूप मे पूजित करवाता था। वह ऐसे अवसर पैदा करवाता था कि जिससे उसको देवता की तरह प्रतिष्ठित किया जाय। परिवार मे किसी का जन्मोत्सव किसी का विवाहोत्सव अथवा किसी अतिथि का आगमन हो—ऐसे ही अवसर होते थे। महफिलो मे गणिकाओ के नृत्य तो चलते ही रहते थे।

राजा पुरुषप्रधान अहकार का वीभत्स प्रतीक था। बाहुबल को वह पुरुषत्व का सर्वोपरि गुण मानता था। किसी के मनोबल को कुचले जाने पर वह अट्टहास किया करता था। पत्थर के देवता के सामने चाहे झुक जाय, किन्तु जनसाधारण को अपने सामने सीधे खडा होकर पेश आना उसे सहन नही होता था। उसकी सहज समझ थी कि राजा को दूसरो के सामने क्रूर भगिमा मे ही दिखाई देना चाहिए। वह चेहरे पर मुसकान दिखाई देने को गरिमा के विरुद्ध महसूस करता था। अपने सिहासन पर वह अपनी सेनापति की पोशाक मे अकड कर बैठा हुआ हुक्म देता दिखाई देता था। उसके पीछे छत्र और चँवर ढोते थे और आस-पास अगरक्षक। उदारता का भाव उसके लिए कायरता की निशानी थी। सिर पर पगडी मे तुर्रा गले मे हार और कमर मे कटार या तलवार उसके पहनावे की पहचान थी।

ऊँचाई पर बनी उसकी गढी पर उसका ध्वज लहराता था जो उसकी जीतो का प्रतीक चिह्न था। घण्टे और नगारे उसकी विजय के उद्घोष थे। गढी के शीर्षस्थ दमकते-चमकते महल टूटी टपरियो का उपहास करते नजर आ रहे थे।

राजा अपने भीतर सदैव शकाओ, आशकाओ और अविश्वासों से आक्रान्त बना रहता था। उसे रात को आक्रमण के सपने आते थे। जब वह चोंक कर एकाएक जाग पड़ता तो खुद को पसीने से तर पाता था, किन्तु तत्काल झाड़-पोछ कर सुराही थाम लेता और फिर चुपचाप सो जाता था। उसकी मुसीबत यह थी कि वह किसी के सामने खुल कर कुछ भी नहीं बता सकता था। अत राजा की मौत अपने ही किसी निकटस्थ के हाथो धोखे से की जाती थी या अत्यधिक पीने से होती थी अथवा अचानक हृदयाघात से और कभी-कभार लड़ाई मे फँस जाने पर दुश्मन के वार से भी हो जाया करती थी।

राजा अपनी जिन्दगी-भर कभी शान्तचित्त होकर प्रकृति के सौन्दर्य की अनुभूति नही कर सकता था। उसके मन मे हमेशा घात-प्रतिघात आक्रमण-प्रत्याक्रमण तथा हार और जीत की दुविधाएँ हिलोरे लेती रहती थीं। वह यो ही जीता-मरता था।

सामन्ती चेतना---राजा जिन्हे उनके सेवाकार्य के पुरस्कार के स्वरूप बड़े इलाको की जमीनो पर काश्तकारी हक दता था---वे प्राय वफादार फौजी हुआ करते थे। पहले उनको जागीरे जीवित रहने तक दी जाती थी बाद मे उनका रूप बदल कर पुश्तैनी हो गया। ये जागीरदार अपनी जागीर क सारे प्रशासनिक कार्यों का सचालन करने लगे थे। जागीरदारो के अधीन कर्मचारी प्रहरी किसान और दस्तकार सभी हुआ करते थे। जागीर मे किसान या मेहनतकश जो भी पैदा करते थे---जागीरदार राजा को टैक्स चुका कर कुछ किसान या श्रमिक को देकर बाकी का बहुत बडा हिस्सा स्वय अपने पास रख लता था।

दूसरे प्रकार के जागीरदार राजा की अच्छी सेवा और खुशामद करने वाले बुद्धिजीवी कर्मचारी थे जिन्हे सवाकार्य के पुरस्कार के रूप मे बड़ी जागीरे पहले किश्त पर दी जाती थी, फिर वे भी पुश्तैनी हो गई। ये सामन्त भी अपनी जागीर के सारे प्रशासनिक अधिकारो के मालिक बन गए थे। वे राजा को येन-केन प्रकार से अपने दायरे से परे ही रखते थे। राजा वैसे ही निकम्मा और टैक्सलेवा ऐयाश होता था और सामन्त को अपना विश्वासप्राप्त समझता था अत वह हस्तक्षेप करने की तोहमत क्यो उठाता!

तीसरे प्रकार के जागीरदार वे थे जो धार्मिक सस्थानो का सचालन करते थे। इनमें बडे-बड़े मठो के मठाधीश या चर्च के बिशप या देवालयो के पुरोहित होते थे। इनके पास भी बड़ी जागीरे थी और वे उनमे रहने वाले वासियो के लिए

शासकीय अधिकारो का उपयोग करते थे। वे लोगो को राजभक्ति (ईश्वरभक्ति के समकक्ष) के प्रवचन देते थे।

एक राजा के देश मे अनेक प्रकार की जागीरे थी इनमे बीसियो–तीसियो या इनसे भी अधिक सामन्त राजकीय प्रशासन का उपयोग करते थे। उनकी दोहरी नीति थी—एक तो राजा के आपराधिक कामो को बढाना और छिपाना और उसके कारनामो को छिपाना व जी–हुजूरी करके उसे खुश रखना और साथ ही उसके सारे इलाकाई प्रशासन के अधिकारो को हथिया कर उसे भीतर से खोखला करते जाना। वे उसे सदा उल्लू बनाने मे लगे रहते थे। कई बार विश्वासघात करके राजा को मरवा भी डालते थे।

सामन्तो का एक वर्ग उसके छुटभैयो और पारिवारिक लोगो का होता था। इस तरह सामन्तो की अनेक किस्मे पैदा होती जाती थी। राजा अपनी मोहर से सबको अवधिपरक जागीरी अधिकार–पत्र देता था। किन्तु कालान्तर मे वे जागीरे पुश्तैनी बन कर आपस मे बँटने लगी थी। राजशाही केवल इसलिए कायम थी कि सारे देश की कमान उसके अधीन थी सामन्तो मे आपस मे सहमति का अभाव था और राज्याधिकारी उनमे बिखराव पैदा किए रखता था।

सामन्त या जागीरदार गरीब किसानो और दस्तकारो का आर्थिक शोषण तो क्रूरतम उत्पीडनो के जरिए करता ही था साथ ही उनसे राजा के लिए और खुद के लिए भी तरह–तरह की लाग–बेगार करवाता था। इसके अलावा सामन्त ठेकेदारो कर्मचारियो आदि को खैरात–वसूली की खुली छूट देता था। सामन्त के अत्याचारो की फरियाद सुनने वाला कोई नही था। वह चाहे किसी को मार दे मरवा दे या जिन्दा दफना दे—वह किसी कानून के दायरे मे नही आता था क्योकि उसने राजा से सारे प्रशासनिक अधिकार माफीनामे मे हथिया लिए थे। राजा भी विरोध की अपील को यदि उसकी भनक किसी तरह उस तक पहुँच जाती तो—उसे विद्रोह की सज्ञा देकर दबा देता था। सबसे ऊपर परमेश्वर या खुदा' था जिसके पास न तो देखने की ऑख थी न सुनने को कान—वह काल्पनिक था अदृश्य था।

इस प्रथा के आरम्भ का एक पहलू और भी था। जब रोम साम्राज्य का पतन हुआ तो चारो ओर अराजकता मार–काट और जोर–जबरदस्ती का माहौल बन गया। इसका फायदा उठा कर लुटेरो ने मनमानी लूट–पाट चालू कर दी और जितना इलाका हाथ लगा उसे अपने कब्जे मे कर लिया। चूँकि किसान और दस्तकार सगठित नही थे अत इन लुटेरो का मुकाबला करने की बजाय उनको अपनी उपज का हिस्सा देकर उनसे समझौता करना पडता

था। लुटेरो को बिना मेहनत किए उपज का हिस्सा और हुकूमत का अधिकार मिल गया। ये लुटेरे ही सामन्त बन गए। ये अनपढ उजड्ड और ताकतवर थे। किसानो और दस्तकारो ने उपज के हिस्से के बदले उनसे बाहरी घावो से सुरक्षा चाही जो उन्हे दे दी गई। उन दिनो और कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं थी जो उन मेहनतकश किसानो को सरक्षण दे सके।

आगे चल कर इन सरदारो के ऊपर बडे सरदार आ गए और इस तरह सामन्तो पर सामन्तो का वर्चस्व बढता गया। इससे राज्यो और राज्यो से बडे राज्यो तथा राजाओ और महाराजाओ व सम्राटो–बादशाहो के रूप मे विकास सम्भव हुआ।

उपर्युक्त भिन्नता का मुख्य कारण अलग–अलग देशों की अलग भौतिक आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ थी। जैसे यूरोप और एशिया और विशेषकर भारत मे सामन्तवाद का विकास हूबहू एक ही रूप म नही हुआ। फिर भी हर जगह मूल लक्षण समस्तर के थे।

दरबार–ए–खास लगा है। राजा सिहासन पर अकड कर बैठा है। सामन्त एक–एक कर झुक–झुक कर मुजरा करके भेट सौपते जा रहे हैं। फिर उल्टे पाँव अपनी सीट पर जा बैठते है। चारो ओर खामोशी का माहौल है। लगभग घण्टे–भर मे सारी रस्म पूरी होती है। इसके बाद राजा गम्भीर अन्दाज मे बोलता है— बोलो सरदारो, सब इलाको मे अमन–चैन तो है न!'

सभी की एक ही आवाज निकलती—'खमा घणी खमा अन्नदाता! आपके रामराज मे सब आनन्द ही आनन्द है।' क्षण–भर की चुप्पी के बाद राजा फिर पूछता है—'किसी को कोई शिकायत?' फिर समवेत स्वर मे रटी-रटाई आवाज—'खमा अन्नदाता! सब खैरियत!'

अन्त मे पाँच मिनट तक राजा एक के बाद एक कई हिदायते देता है और फिर खडा होकर चारो ओर दख इजलास खत्म होने की घोषणा कर धीरे–धीरे भीतर लौट जाता है। बाद मे सामन्त एक–दूसरे की ओर मुस्कराते हुए हॉल से बाहर चले जाते है।

पागल कही का! बेवकूफ कहो!'

सामन्ती समझ—रस्मी चापलूसी राजा के नाम पर चाहे जितना अत्याचार करो, उसके दुश्मन से मिल कर भीतरघात भाइयो को भिड़ाने की साजिशे आपस मे प्रतिस्पर्द्धा लूट–खसोट के तरीको की खोज बाहुबलियो का आतक फैलाने मे उपयोग कहीं–कही दीनदया का प्रदर्शन जगह–जगह

धार्मिक पाखण्ड का फैलाव, प्रेत, भूत और देवता के प्रकोप का प्रचार भाग्य पुनर्जन्म स्वर्ग-नरक धीरज, सहनशीलता ईश्वरभक्ति सन्तोष आदि के उपदेश देने वालो का जाल फैलाना, पूजा-पद्धतियो की आड मे हर तरह की हरकत करना शिकायत की आशका होते ही कुचल डालना और अपने ऐशा-हसरत को पूरा करने के लिए कल्पनातीत अत्याचार करना।

किसान या भू-दास—दासो को किसी वस्तु या काम से कोई लगाव नही था किन्तु किसान को ज्योही जमीन का कोई टुकड़ा मिल गया त्योही उसके प्रति उसका ममत्व जाग उठा। क्योकि वह उसके जीवन का प्रमुख आधार था। परिवार रखने-बनाने उसके पालन-पोषण की ज्योही सुविधा मिली उसकी ममता व्यापक होने लगी। जमीन पर काम करने का हक मिलने की एवज मे किसान ने सामन्त के शोषण की शर्तो को स्वीकार किया उसकी ज्यादतियो से समझौते किए। उसने स्वामी के लिए उत्पादक श्रम करने के अलावा अपने और अपने परिवार के लिए अतिरिक्त श्रम करने का बोझ उठाना मजूर कर लिया।

धरतीपुत्र होने के कारण उसके ममत्व का विस्तार प्रकृति की सारी गतिविधियो तक होता गया। उसकी ऑखे आसमान की ओर टकटकी लगाए बादलो के आने और बरसने का इन्तजार करने लगीं जैसे कोई मध्यवर्गी आशिक प्रेमिका के आने की आहट के सुनाई देने को आतुर हो। वह धूप-छाँह आँधी-तूफान, सुबह-दोपहर-रात की प्रत्येक हरकत से अपना जुडाव बढाता गया। प्रकृति की अद्भुत सुन्दरता उसकी विभीषिका और उसकी अनुकूल-प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ उसके लिए सुपरिचित होती गईं। बरसात होते ही और फिर फसल के हाथ लगते ही वह और उसकी पत्नी आह्लादित होकर झूम उठते थे।

उसको अपने कच्चे मकान या झोपड़े से प्रेम हो गया था। जब कभी आँधी-तूफान या और कोई प्राकृतिक या कृत्रिम विपत्ति उसे क्षति पहुँचाती या नष्ट कर देती थी तो वह और उसका सारा परिवार उसके पुनर्निर्माण मे रात-दिन एक कर देता था। बार-बार बर्बादी को वह बार-बार के पुनर्निर्माण मे तबदील करता रहता था। 'नीड का निर्माण फिर-फिर नेह का आह्वान फिर-फिर।'

किसान स्वभाव से भाग्यवादी होता था— भगवान वर्षा करेगा तो उसका कर्ज चुकेगा।' किस्मत से इस साल सूखा पड गया—तो सारी मेहनत बेकार गई। पर मालिक का पेटा तो पूरा करना ही होगा। अब की बार न सही तो अगली बार तो वह हमारी भी सुनेगा ही। वह गरीबी-अमीरी को भगवान की देन

समझ कर कष्ट सहने का आदी हो गया था। 'होइहै वही जो राम रचि राखा' इसी प्रकार सुख और दु ख के प्रति उसकी समझ विधि के लेख' से परे नहीं जाती थी।

किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि किसानो मे विद्रोह की भावना का नितान्त अभाव था। किसानो के सघर्षों का भी विश्व इतिहास मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। विस्तार मे न जाकर निम्नाकित उदाहरणो से ही साकेतिक अनुमान लगाया जा सकता है—

- अजरबैजान और पश्चिम ईरान मे बाबेक के नेतृत्व मे किसानो के विद्रोह
- इग्लैण्ड मे वाट टाइलर के नेतृत्व मे किसान विद्रोह
- बोहेमिया मे हुसपन्थी महान् कृषक युद्ध
- जर्मनी मे महान् कृषक युद्ध
- चीन मे किसान युद्ध
- भारत मे और विशेषकर पजाब मे किसान-विद्रोह

ये चन्द उदाहरण हैं—विश्व मे सामन्ती काल मे जगह-जगह किसानो के जुझारू आन्दोलन और विद्रोह हुए हैं। इनमे कई तो दीर्घकालीन भी थे।

दलित—दलित वर्ग भारतीय वर्ण-व्यवस्था की उपज है। शुरू मे वह शूद्र (वर्ण-व्यवस्था के चौथे वर्ण) मे सम्मिलित था, बाद मे सामन्ती काल के आरम्भ मे अस्पृश्य' श्रेणी मे अध पतित कर दिया गया और उसके जिम्मे गली-मुहल्लो की सफाई करना और सिर पर मल-मूत्र ढोन का काम निर्धारित कर दिया गया। उच्च वर्ण के किसी व्यक्ति पर उसकी छाया तक पड़ जाती थी तो उसको मार खानी पडती थी। वह भूल से ही किसी को अपशब्द बोल दे तो उसकी जीभ खीच ली जाती थी। वह किसी के लात मार दे तो उसके पैर चीर दिए जाते थे। वह किसी पर हाथ उठा लेता तो उसके हाथ तोड दिए जाते थे। वह किसी पर ऑख तरेर देता तो उसको जलती सलाखे डाल कर अन्धा कर दिया जाता था। वह किसी मन्दिर मे प्रवेश नही कर सकता था। शादी के समय घोडे पर चढ कर बाहर निकलने की इजाजत नही थी। उसे शिक्षा प्राप्त करने या नौकरी करने का अधिकार नहीं था। उसे और उसके परिवार को जूठन के खाने पर गुजर करना पडता था या किसी व्यक्ति के मरने पर उसके गन्दे-पुराने कपडे दे दिए जाते थे। उसे मरे हुए पशुओ को ले जाना पडता था।

उपेक्षा घोर अपमान तिरस्कार पर तिरस्कार गालियो का रोजमर्रा का सिलसिला उत्पीडन औरतो से बलात्कार—यह दलित के जीवन की

दिनचर्या थी। बचपन मे ज्यो ही उसकी समझ बढती, वह जल्दी ही इस नतीजे पर पहुँच जाता था कि ईश्वर ने उसे इस योनि मे जन्म देकर उसके पिछले जन्म के पापो का फल दिया है, इसमे दूसरे किसी का क्या दोष है' अब तो नरक को ही जीना है, उसी म मरना है।

दीन-हीन उसका भीतर हर क्षण टूटता, हर क्षण बिखरता और इस टूटती-बिखरती जिन्दा लाश को ढोता हुआ आधी-अधूरी उम्र मे चल बसता। उसकी हर सुबह उदास, हर शाम उदास और हर रात कयामत। वह सुन्नता का साँस गिनता-गिनता पटाक्षेप मे चल गुजरता।

अलबत्ता बौद्ध समुदाय मे प्रवेश से उसका स्तर बदलता था अथवा ईसाई का चोला पहन कर खुद को आदमी महसूस कर लेता था। यह एक प्रकार की खामोश बगावत थी। हाँ आजादी के दौर मे वह भी कुर्बानी देने वालो मे जा मिलता था जहाँ उसे रोक-टोक करने की किसी की हिम्मत नही थी। भक्ति आन्दोलन मे मिलने पर भी वह बच सकता था। ऊँच-नीच जाने ना कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।'

हजारो सालो तक दलित उच्चवर्ण के अत्याचार सहते रहे। यहाँ तक कि आज भी बहुत-से शहरो और गाँवो मे ऐसे दलित मिल जायेगे जिनकी स्थिति मे मूलभूत परिवर्तन नही हुआ है और उनको जिन्दा जला दिया जा रहा है या अन्य तरीको से प्रताड़ित किया जा रहा है। आज भी उन्हे समुचित सरक्षण और न्याय प्रदान करने की समुचित व्यवस्था का अभाव है। फिर भी धीरे-धीरे दलित वर्ग मे चेतना का सचार हो रहा है। डॉ भीमराप अम्बेडकर को इसका प्रमुख श्रेय जाता है कि उन्होने दलित वर्ग को जगाने मे सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसमे आरक्षण प्रणाली ने भी काफी सहभागिता निभाई।

आजकल दलित वर्ग के रचनाकार अनेक प्रकार की गद्य-पद्यमयी विधाओ मे दलितो के अन्तस्तल की स्थितियो मर्मान्तिक पीड़ाओ प्रबुद्ध विवेचनाओ और समाधानात्मक विमर्शो से परिपूर्ण अन्तर्वस्तुओ को उजागर कर रहे हैं कि जिनस मौलिक परिवर्तनो के आने की सम्भावनाएँ व्यक्त की जा सकती है।

आज जो दलित साहित्य रचा जा रहा है वह निकट भविष्य मे समस्त वाङ्मय का एक समुज्ज्वल अध्याय बन कर निखरता दिखाई देगा।

नारी—सामन्ती व्यवस्था पुरुषप्रधान समाज-व्यवस्था थी। जब से मातृ-प्रधानता का विध्वस हुआ और पुरुष-प्रमुखता ने उसका स्थान ले लिया तभी से नारी की स्थिति मे लगातार गिरावट होती चली गई, जो सामन्ती प्रथा

के आते ही निम्नतम स्तर तक पहुँच गई। अब वह भोग्या और उत्पीडिता मात्र रह गई थी। अब वह बेचने-खरीदने की वस्तु की स्थिति तक पहुँच चुकी थी।

दुनिया की ऐसी कोई नारी नही जो श्रमजीवी न हो। गर्भ धारण करना गर्भावस्था का भार वहन करना प्रसव की पीडा सहन करना शिशु का उत्पादन करना उस स्वय द्वारा स्तनोत्पादित दूध द्वारा पोषित करना, मल-मूत्र से उसकी सफाई करना उसे नहलाना उसे बहलाना सहलाना अर्थात् पालन-पोषण आदि। इसके बाद उसके सँभलने तक उसकी देखभाल करना। इस सार श्रम का मेहनताना?

फिर चूल्हे-चक्की का काम बर्तन-कपडो की सफाई रोजमर्रा की घर की सफाई खेत-खलिहान का काम पशुपालन का काम, हारी-बीमारी का काम। सुबह उठते ही शुरू होने वाले काम से लेकर रात को सोने को जाने तक के काम। काम काम और काम! मेहनताना?

पति की हर ख्वाहिश को पूरा करना फिर भी डाँट-फटकार और मार-पीट। मार-पीट थोडी-सी चूक के लिए दहेज के लिए, किसी गैर से बात करने के लिए या नशे की मनाही करने पर। यह पति ही तुम्हारा परमेश्वर है—हर हाल मे उसकी सेवा-पूजा करो!

यदि नारी रानी या महारानी है तो वह महल की जेल मे जीवन-भर कैद मे रहगी। झरोखो के छेदो से तारो को निहारती रहेगी। राजा नई-नई रानियाँ-पटरानियाँ रखैले आदि भोगगा और उस देखते रहना होगा, घुट-घुट कर मरते जाना होगा। वह अपनी ओर से कोई गैर राजा-महाराजा लाकर अपना राजा-पटराजा या रखैला नही रख सकेगी। उसे तो उसी सर्वभोग्या राजा की मौत पर उसके शव के साथ शव को गोद म लेकर जिन्दा जलना होगा सती होना होगा। राजा पुरुष होने के कारण किसी रानी के शव के साथ जिन्दा नहीं जलेगा सता नहीं होगा। क्या हुआ एकाध? मीराँ विधवा होकर छिप-छिपा कर भक्तो मे जा मिली।

सामन्ती जकडन मे नारी की सगठित या सामूहिक चेतना का विकास नही हो सका। यह वास्तव मे सर्वहारा मेहनतकश ही रही बल्कि उससे भी नीचे के स्तर की श्रमजीवी जिसके श्रम का चाहे जो उपयोग किया जा सकता था किन्तु उसका मूल्य निर्धारित नही किया जा सकता था।

उस युग मे औरत चाहे माँ हो बहिन हो बेटी हो—पिता भाई या बेटे के मुकाबले मे कहीं नहीं ठहर सकती थी। कन्या की भ्रूण या शिशुहत्या होती

थी—पुत्र शिशु की नही। पुत्र के पैदा होने के लिए किसी की बलि भी दी जा सकती थी।

यद्यपि नारी-जागरण का बीज भक्ति आन्दोलन सुधार आन्दोलन पुनर्जागरण आदि आन्दोलनो मे अकुरित होने की स्थिति मे आ गया था, किन्तु स्वाधीनता सग्रामो मे ही उनको विकसित होने का मौका मिला। औरतो को सगठित करने का कार्य वामपन्थियो ने ही किया। सारे वामपन्थी आन्दोलना मे नारियो ने क्रान्तिकारी भूमिका अदा की।

आधुनिक युग में नारी-चेतना मे अभूतपूर्व विकास हो रहा है। कहीं-कहीं दलितवादी साहित्य की तरह नारीवादी साहित्य का सृजन भी भरपूर गम्भीरता के साथ किया जा रहा है जो पुरुषप्रधान अधिशेप जडताओ पर सफल प्रहार करते हुए इस जघन्य प्रवृत्ति को चुनौती दे रहा है। वैसे कुछ भी कहा जाय दलितवादी साहित्य की तरह नारी-चेतना का नारीवादी साहित्य भी समग्र मानवीय वाङ्मय-चेतना से अलग-थलग नही किया जा सकता।

बुद्धिजीवी—वैसे तो बुद्धि भी मस्तिष्कीय श्रम होने के कारण बुद्धिजीवी एक विशिष्ट प्रकार का श्रमजीवी ही होता है किन्तु बुद्धिजीवी राज-कर्मचारी सचिव सलाहकार साहित्यकार विचारक दार्शनिक वैज्ञानिक आदि के क्रिया-कलापो को अजाम देता है, अत उसकी चेतना आम शारीरिक श्रमजीवी से असामान्य स्तर की हो जाती है। सामन्ती काल मे बुद्धिजीवी प्रवृत्तियो पर उस समय की समाज-व्यवस्था का सहज प्रभाव परिलक्षित होता है।

बुद्धिजीवी जागीरदार की चापलूसी करके उससे अपनी बेजा हरकतो को बढाने की छूट ले लेता है। इस छूट से वह भी जनसाधारण के लिए शोषक की भूमिका अदा करने लगता है। वह कई बातो मे सत्ता को भी धोखे मे रखता है तो जनता को भी सचाई से दूर रखता है। किन्तु जागीरदार धोखा खाकर भी उसे पुरस्कृत करता है तो आम आदमी भी उसकी बातो के चक्कर मे फॅस कर ठगे जाने को तैयार रहता है। बुद्धिजीवी का यह दोगला चरित्र उसकी आदत का हिस्सा बन जाता है।

वह मुस्करा कर यह पता नही चलने देगा कि उसके भीतर क्या रहस्य छिपा है—वह काटेगा कि सुख देगा! वह रोने की सूरत दिखा देगा तो कोई आसानी से उसको घडियाली पोज नहीं कह सकता। उसका गुस्सा असली भी हो सकता है तो स्वार्थसिद्धि के लिए नाटकीय भी। उसकी एक बात के बीस अर्थ निकाले जा सकते हैं। उसकी लिखावट मे हाँ के पीछे ना और ना की

आड़ मे हीँ समझी जा सकती है। उसकी सुहावनी सलाह इतनी चमकीली लगेगी कि उसे मानना ही पड़ेगा—बाद मे चाहे छाती पीटना ही क्यो न बाकी बचे।

वह कुछ नही करेगा, किन्तु ऐसी उलझन पैदा कर देगा कि आखिर उसी के पास समाधान तलाशने के लिए आना लाजिमी हो जायेगा। इसी दौरान वह अपना उल्लू सीधा कर लेगा।

बुद्धिजीवी के बिना किसी का काम नहीं चल सकता। उसके बिना प्रशासन का पत्ता भी नहीं हिल सकता। उसमे विशेषताएँ भी हैं तो विषमताएँ भी। वह प्रशासनिक अनिवार्य आवश्यकता है तो अनिवार्य विकृति भी। उसके द्वारा प्रदत्त विरासत रचनात्मक है तो ध्वसात्मक भी।

उसने राजाओ को लडाया सामन्तो को भिड़ाया, परिवारो को तोडा सम्प्रदायो और जातियो मे दगे करवाए। उसी ने ऐयाशो को अवसर दिए और बर्बाद भी किए। उसी ने राज और ताज बदले। हर प्रकार के षड्यन्त्र को रचने वाला बुद्धिजीवी का ही दिमाग होता है, किन्तु उसके परिणामस्वरूप ध्वस्त होने वाले कोई और ही।

लेकिन सामन्ती प्रथा मे साहित्य कला वास्तु और सस्कृति आदि के क्षेत्र मे जो भी बहुमूल्य सृजन हुआ उसमे बुद्धिजीवी प्रतिभाओ की ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अन्यथा न कबीर होता, न शेक्सपियर। बुद्धिजीवी होने के लिए न तो डिग्रिया की अनिवार्यता होती है और न ही शास्त्रीयता की। अनुभूति चेतना और सवेदनायुक्त बेपढ़ा व्यक्ति भी बुद्धिजीवी हो सकता है।

बुद्धिजीवी वर्गच्युति अपना कर शोषक वर्ग का व्यक्ति भी शोषित वर्ग के लिए प्रतिबद्ध हो जाता है। इतिहास मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। इसके विपरीत कोई शोषित वर्ग का बुद्धिजीवी नेता या पक्षधर परिस्थितिवश अपनी वर्गीय प्रतिबद्धता को तिलाजलि देकर शोषक वर्ग का दलाल भी बन सकता है। यह केवल सामन्ती समाज के लिए ही हुआ हो—ऐसा नही अपितु प्रत्येक वर्ग-विभाजित वर्ण-विभाजित समाज मे ऐसा होना सम्भव हुआ है और होगा। वर्ग-च्युति वर्गीय आनुवशिकता या परिस्थितिजन्य पक्षधरता को सर्वत्र प्रभावित करती है।

श्रमजीवी—खेतिहर मजदूर इमारती मजदूर दस्तकार श्रमिक मूर्तिकार घर का काम करने वाले नौकर बाल कटाई करने वाले खनिक सैनिक बागवान कपडे धुलाई वाले आदि अनेक प्रकार के असगठित

मेहनतकश हैं जिनमे कुछ स्वरोजगारी हैं तो कुछ मजूरी मिलने पर सीमित अवधि के श्रमजीवी हैं। सबकी आजीविका का आधार श्रम करना है।

जो किसी के निदेशानुसार मेहनत करते हैं वे यन्त्रवत् मजूरी करते हैं जैसे इमारती मजदूर और जो पुश्तैनी काम सँभालकर रोजी कमाते है वे लगभग स्वायत्त व स्वविवेक से काम करने वाले श्रमशील होते है। सामन्ती काल मे हर श्रमजीवी बेगार करने को विवश था। राजा से लेकर छोटे से छोटा कर्मचारी उनसे वस्तु-भेट के अलावा बेगार मे काम करवा लिया करता था। अत वे शोषित वर्ग के ही अग थे।

प्राय श्रमजीवी शोषक वर्ग के विरुद्ध ही होते हैं किन्तु अधिकाश मे प्रतिरोध करने की प्रवृत्ति नहीं होती। यन्त्रवत् मजूरी करने वाले सघर्षों मे सक्रिय नही रहते किन्तु वे शोषक के प्रति वफादार भी नही होते। उनकी सवेदनाएँ शोषित वर्ग के प्रति हाली हैं। वे न तो चापलूसी करके सहूलियत हासिल करना चाहते हैं और न ही मुफ्तखोरी के लालच मे कोई काम करते है। उनका सिद्धान्त 'खरी मजूरी चोखा दाम' मे निहित होता है। श्रमजीवी कभी दोगली नीति का अनुसरण नही करते। उनमे से कुछ तो ऐसे भी निकल जाते है जो मालिक की मर्जी के खिलाफ साफ बात कहने मे भी नही चूकते। वे पगार की कुर्बानी भी दे सकते हैं। वे श्रम पर भरोसा रखते हैं—अनुकम्पा पर नही। उनका कहना होता है—'हम अपनी मेहनत की खाते हैं किसी के बाप की दी हुई नही।'

श्रम की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह श्रम करने के दौर मे श्रमिक और श्रम, दोनो मे सुधार की तकनीक पैदा करता रहता है। इसी से, केवल इसी प्रक्रिया से श्रमिक और श्रम के अनेक नये मार्ग प्रशस्त होते है। विज्ञान की प्रयोगशाला मे पहुँच कर उसकी यही विधि विकास के तरीके या तकनीके ढूँढ निकालती है।

सामन्ती काल के सारे किले, महल हवेलियाँ मठ मन्दिर मस्जिदे गिरजाघर, परकोटे मकबरे समाधियाँ व अन्य भवना के निर्माण मे जहाँ तत्कालीन वास्तुकारो कारीगरा, मिस्त्रियो पत्थरतराशो, चित्रकारा आदि का योगदान है वहाँ अपनी जान हथेली पर रख कर बड़े-बड़े भारी पत्थरो को मजिल-दर-मजिल चढाने मे कमरतोड़ मेहनत करने वाली पीढियो का भी कम महत्त्व नहीं है। बीस साल तक ताजमहल को बनाते रहने मे न जाने कितनी माँओ के बेटो को अपना गर्म खून बहाना पडा होगा। आज तो उस दौर की कल्पना भी नही की जा सकती।

एक ओर खून का पसीना कर बनाई गई इमारते थीं, तो दूसरी तरफ उन्ही मे रात-दिन महफिलो के नाच-गाने मौज-मस्तियाँ और शराब के प्याले-पर-प्याले खाली किए जा रहे थे। एक तरह से शोषक शोषितों का खून पी रहा था। श्रमजीवी म बेहद धीरज ईमानदारी और लगन थी तो शोषक वर्ग म आलस्य क्रूरता बेईमानी, षड्यन्त्रकारिता और ऐयाशी का दौर-दौरा था।

लेकिन उन दम्भपूर्ण राजा-महाराजो, सम्राटो या बादशाहों तथा उनके जागीरदार सामन्तो को पता नहीं था कि दीर्घकालीन उत्पादक श्रम के अनन्त अनुभवो से प्राप्त नई तकनीकी के आगमन ने उनकी व्यवस्था की जड़ो को ही उखाड़ने की तैयारी कर दी है। देखते ही देखते तख्तोताज गिरने लगे। तलवारे धरी की धरी रह गई। कई पकड़े गए कई भाग खड़े हुए। बेगम गमगीन हो गई रानियाँ रोती रह गई।

श्रम जीत गया बेशर्म को मुँह की खानी पडी। गढ-किले पर्यटन स्थलों मे बदल गए। राजाओ-सामन्तो के पीछे रोने वाला कोई नहीं रहा।

धर्माधिकारी—मठाधीश बिशप इमाम मौलवी महन्त, राजपुरोहित राजगुरु सन्त, योगीराज, शकराचार्य, अवधूतानन्द पण्डा, महापुजारी मनुज ग्रन्थी पाठी पीठेश्वर अखाड़ेश्वर तथा महामुनीश्वर आदि धर्माधिकारी थे। ये सब अपनी विशेष पोशाक से पहचाने जाते थे। सामन्ती काल मे इनमे से अधिकाश जागीरदार थे अथवा जागीरदार के समकक्ष। ये स्वय किसी प्रकार का उत्पादक श्रम नहीं करते थे किन्तु इनके पास धर्मस्थल के परिसर के अलावा बहुत बड़े भूखण्ड होते थे। शासक वर्ग इनके आगे नत मस्तक रहता था। उसे इनमे ईश्वरीय तेज और लक्षण दिखाई देते थे। ये शासक के पक्ष मे नैतिक उपदेश देते थे। उन्होने जनसाधारण को धर्म के दैनिक कार्यक्रमो मे व्यस्त कर दिया था। वेद गीता बाइबिल कुरान गुरुग्रन्थ आदि धर्म-पुस्तको के उद्धरणो के साथ पौराणिक गाथाएँ जोड़-जाड़ कर प्रवचन करते रहते थे।

धर्माधिकारी पोगापन्थी रूढ मूढ स्वार्थी और सम्पत्तिलोलुप होते थे। उन्हे दार्शनिक रहस्यो के उद्घाटन प्रकृति के नियमो की पहचान और जनसाधारण के दु ख-दर्द के बारे मे चिन्तित होने से कोई वास्ता नहीं था। अच्छे से अच्छा खाना बढिया वस्त्र धारण करना भूमिगत रूप से शासकीय व्यावसायिक यौनिक तथा जान्त्रिक-तान्त्रिक कर्मियो के षड्यन्त्रो मे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से भागीदार बनना उनके क्रियाकलापो के अग थे।

ईश्वर या अवतार अथवा उसके सदेशवाहक की आड़ मे धर्माधिकारी

पाखण्डो का पूरा जाल फैलाए रखते थे। रात के अँधेरे मे प्रशासन के अधिकारी और खुफिया कर्मचारी उन्हे शहर–गाँव की सारी गतिविधियो की जानकारी देते थे। बदले मे धर्मगुरु उन्हे अपनी सलाह दिया करते थे। इससे ईश्वर या अवतार धर्माधिकारी के धर्म–कर्म राजा, सामन्त और प्रजा के तार आपस मे जुडे रहते थे।

राजा और सामन्तो के अत्याचारो पर पर्दा डालने के लिए यह आवश्यक था कि भोली–भाली और अन्धविश्वासो से जकडी हुई जनता अपने काम के अलावा अन्य किसी बात की ओर ध्यान न दे और इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए धर्माचार्यो का सारा प्रयास सक्रिय था। सामन्ती प्रथा के किसी धार्मिक अखाडेबाज ने न किसी दु खी प्राणी को सहायता दी और न ही रचनात्मक कार्य मे हिस्सा लिया। वे सामन्तो की तरह मक्कार और राजाओ की तरह अहकारी और तुनकमिजाजी होते थे।

राजा और जागीरदार ऊपर वाले का वरदान प्राप्त करने के लिए प्राय धर्मस्थल पर आया करते थे तो सन्त–महन्त के भी पॉवो को छूते थे और वे आशीर्वाद के तौर पर उनके सिर पर हाथ की छाया करके उनके वर्चस्व को और बढा देते थे। फिर आम लोगो मे यह प्रचारित कर दिया जाता था बाबा ने राजा को अभयदान दे दिया।

प्रत्येक धर्मगुरु एक ओर तो राजगुरु भी कहलाता था, किन्तु दर हकीकत वह राजाशाही का प्रचार–उपकरण मात्र ही था। उसके हर प्रवचन के नीति वाक्यो का साराश यही होता था कि राजा ईश्वर का ही मूर्तिमान स्वरूप है जो पृथ्वी पर बढे हुए पाप और पाप को और ज्यादा बढाने वाले पापियो को नष्ट करने के लिए भेजा गया है। जब–जब इस तरह के गुनाहो और गुनहगारो का बढाव होता है वह खुदा इसी तरह गुनाहो की सजा देने के लिए अपने स्वर्गदूत भेजा करता है।

धर्मधुरन्धरो की पक्षधरता और प्रतिबद्धता शोषक वर्ग के लिए ही रही है किन्तु वे सत्तापरिवर्तन के लिए राजा का कत्ल भी करवाते रहे है।

स्वर्ग के जागीरदार—दासप्रथा और सामन्ती व्यवस्था की अवधि मे जितने धर्म पैदा हुए उनके सम्बन्ध मे प्रचलित अवतार और देवता तथा उनके प्रवर्तक आदि सभी कभी के स्वर्ग के जागीरदार बन चुके थे फिर उन्होने अपनी प्रतिमाएँ और प्रतीक धर्माध्यक्षो के माध्यम से इस भूतल के वासियो के पास पूजास्थलो मे प्रतिष्ठापित करने के लिए भेज दिए। ब्रह्मा, विष्णु और महेश

स्वर्ग के पुराकालिक जागीरदार हैं, उसके बाद प्रवर्तको ने अपनी-अपनी स्वर्गिक जागीरो पर कब्जा कर लिया। अब पूजा-प्रतिष्ठानो में कहीं प्रतीकात्मक मूर्तियाँ हैं, तो कहीं प्रतीकात्मक क्रॉस कहीं धर्मग्रन्थ तो कहीं प्रवर्तक की काल्पनिक प्रतिमा अथवा उनके आदेश का शिलालेख।

अवतार देवता तथा हर धर्म के प्रवर्तक के विषय मे धर्माधीक्षक अपनी सम्पूर्ण आस्था को बटोर कर सप्रमाण सिद्ध करते हैं कि वे स्वर्ग मे वास करते हुए भी पृथ्वी पर पूरी नजर रखते हैं। मन्दिर गिरजाघर, मस्जिद गुरुद्वारे मठ उपासरे सभी उनके अनहद नादो से अनुगुजित हैं जिनका मर्म केवल धर्माधिकारी ही जान सकते हैं।

उन्हीं स्वर्गपतियो, स्वर्ग-सामन्तो और स्वर्गाधीशो के निर्देशो के अनुसार इस दुनिया का कारोबार चलता है। वे सारी सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक तथा सास्कृतिक और यहाँ तक कि वैज्ञानिक सक्रियताओ को अदृष्ट पृष्ठभूमि से निर्देशित करते हैं। वे विधिविधायक सरक्षक, नियामक नियन्त्रक एव विनाशक का दायित्व निभाते हैं। धर्मों मजहबो और पन्थो पर सारा ससार टिका हुआ है। यदि ये न होते तो प्रकृति जहाँ की तहाँ स्थिर हो जाती और सृष्टि का सचालन ठप्प हो जाता। तब केवल प्रेतो या राक्षसो का आतकपूर्ण नृत्य ही शेष रह जाता। जीव-जन्तुओ, वनस्पति और मानव-प्राणी के अस्तित्व की तो कल्पना ही नही की जा सकती थी।

धर्म के द्वारा निर्देशित मार्ग ही मोक्ष की दिशा को निर्धारित करता है।

स्वर्ग का स्वामी—लेकिन सम्राटो का महासम्राट् बादशाहो का सबसे बडा बादशाह अवतारो पैगम्बरो धर्म-प्रवर्तको अर्थात् स्वर्ग के राजाओ और जागीरदारो का सर्व सूत्रधार तो वह परमेश्वर यानी कि सबसे बड़ा स्वर्गस्वामी, परमपिता (परममाता नही), खुदा अल्ला या जिस किसी भाषा मे उसे जिस किसी सज्ञा से पुकारा जाय—वह है। वह तो ऐसा है जो अदृश्य है अज्ञेय है निराकार है अर्थात् न उसका कोई तन है न मन, न आँख-कान-नाक-दाँत-मुँह वह 'नही का है है और है' का नही भी है। वह अनस्तित्व का अस्तित्व है तो अस्तित्व का अनस्तित्व भी। वह न कोई काया है, न माया और न ही कोई छाया।

अन्तरिक्ष भी एक विस्तार सापेक्ष अँधेरा खोल है किन्तु वह तो देश (अन्तरिक्ष) प्राकृतिक पदार्थ काल और गति आदि सबसे रहित है। वह एक ऐसा रहस्य है जो रहस्यातीत है कभी भी उद्घाटित न हो सकने वाला रहस्य।

वह चेतना का अचिन्त्य, कल्पना की अकल्पनीयता और अभाव का भाव तथा भाव मे अभाव है।

लेकिन नहीं वह दासस्वामित्व एव सामन्ती चिन्तको की उपज है—उन प्रथाओं का कल्पनाप्रसूत सुरक्षा-कवच जो तब तक जेहन मे बनाए रखा जायेगा, जब तक वर्गभेद कायम रहेगा। कल तक वह अस्तित्व दासस्वामियो और सामन्तो का रक्षा-कवच था तो आज पूँजीधारको पूँजी-विस्तारक व्यवस्थापको का।

विज्ञान के इस युग मे भी उस निराकार की साकार प्रेतछायाओ को नित नये तरीको से जेहन मे उतारे जाते रहने का क्रम जारी है—पूजा-पद्धतियो के प्रवचनो के, तथाकथित गूढ चिन्तन की अभिव्यक्तियो के माध्यम से।

अज्ञेय के ज्ञात प्रतीक प्रतीकों के भी अवशिष्ट प्रतीक कभी दासो, दमितो, नारियो, किसानो और मेहनतकशो के निर्मम शोषण और उत्पीडन के उपकरण बने तो आज भी शोषित-पीडित अभावग्रस्त गरीबो को तिल-तिल कर मरने की मजबूरी पैदा करने वाले तत्त्वो के उपकरण बन रहे हैं।

क्या ये यो ही बने रहेगे? नहीं तो!

स्वर्ग के पुराकालिक जागीरदार हैं उसके बाद प्रवर्तको ने अपनी-अपनी स्वर्गिक जागीरो पर कब्जा कर लिया। अब पूजा-प्रतिष्ठानो मे कहीं प्रतीकात्मक मूर्तियाँ है तो कहीं प्रतीकात्मक क्रॉस कही धर्मग्रन्थ तो कही प्रवर्तक की काल्पनिक प्रतिमा अथवा उनके आदेश का शिलालेख।

अवतार देवता तथा हर धर्म के प्रवर्तक के विषय मे धर्माधीक्षक अपनी सम्पूर्ण आस्था को बटोर कर सप्रमाण सिद्ध करते हैं कि वे स्वर्ग मे वास करते हुए भी पृथ्वी पर पूरी नजर रखते है। मन्दिर गिरजाघर मस्जिद, गुरुद्वारे, मठ उपासरे सभी उनके अनहद नादो से अनुगुजित हैं जिनका मर्म केवल धर्माधिकारी ही जान सकते हैं।

उन्ही स्वर्गपतियो, स्वर्ग-सामन्तो और स्वर्गाधीशो के निर्देशो के अनुसार इस दुनिया का कारोबार चलता है। वे सारी सामाजिक राजनीतिक आर्थिक तथा सास्कृतिक और यहाँ तक कि वैज्ञानिक सक्रियताओ को अदृष्ट पृष्ठभूमि से निदेशित करते है। वे विधिविधायक सरक्षक, नियामक नियन्त्रक एव विनाशक का दायित्व निभाते हैं। धर्मो मजहबो और पन्थो पर सारा ससार टिका हुआ है। यदि ये न होते तो प्रकृति जहाँ की तहाँ स्थिर हो जाती और सृष्टि का सचालन ठप्प हो जाता। तब केवल प्रेतो या राक्षसो का आतकपूर्ण नृत्य ही शेष रह जाता। जीव-जन्तुओ वनस्पति और मानव-प्राणी के अस्तित्व की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती थी।

धर्म के द्वारा निर्देशित मार्ग ही मोक्ष की दिशा को निर्धारित करता है।

स्वर्ग का स्वामी—लेकिन सम्राटो का महासम्राट् बादशाहो का सबसे बड़ा बादशाह अवतारो पैगम्बरो धर्म-प्रवर्तको अर्थात् स्वर्ग के राजाओ और जागीरदारो का सर्व सूत्रधार तो वह परमेश्वर यानी कि सबसे बडा स्वर्गस्वामी परमपिता (परममाता नही) खुदा अल्ला या जिस किसी भाषा मे उसे जिस किसी सज्ञा से पुकारा जाय—वह है। वह तो ऐसा है जो अदृश्य है अज्ञेय है निराकार है, अर्थात् न उसका कोई तन है न मन न आँख-कान-नाक-दाँत-मुँह वह नहीं का है है और है का नही भी है। वह अनस्तित्व का अस्तित्व है तो अस्तित्व का अनस्तित्व भी। वह न कोई काया है न माया और न ही कोई छाया।

अन्तरिक्ष भी एक विस्तार सापेक्ष अँधेरा खोल है किन्तु वह तो देश (अन्तरिक्ष) प्राकृतिक पदार्थ, काल और गति आदि सबसे रहित है। वह एक ऐसा रहस्य है जो रहस्यातीत है कभी भी उद्घाटित न हो सकने वाला रहस्य।

वह चेतना का अचिन्त्य कल्पना की अकल्पनीयता और अभाव का भाव तथा भाव मे अभाव है।

लेकिन नही वह दासस्वामित्व एव सामन्ती चिन्तको की उपज है—उन प्रथाओ का कल्पनाप्रसूत सुरक्षा-कवच, जो तब तक जेहन में बनाए रखा जायेगा, जब तक वर्गभेद कायम रहेगा। कल तक वह अस्तित्व दासस्वामियो और सामन्तो का रक्षा-कवच था तो आज पूँजीधारको, पूँजी-विस्तारक व्यवस्थापको का।

विज्ञान के इस युग मे भी उस निराकार की साकार प्रेतछायाओ को नित नये तरीको से जेहन मे उतारे जाते रहने का क्रम जारी है—पूजा-पद्धतियो के, प्रवचनो के तथाकथित गूढ चिन्तन की अभिव्यक्तियों के माध्यम से।

अज्ञेय के ज्ञात प्रतीक प्रतीकों के भी अवशिष्ट प्रतीक कभी दासो, दलितो नारिया किसानो और मेहनतकशो के निर्मम शोषण और उत्पीड़न के उपकरण बने तो आज भी शोषित-पीड़ित अभावग्रस्त गरीबो को तिल-तिल कर मरने की मजबूरी पैदा करने वाले तत्त्वो के उपकरण बन रहे हैं।

क्या ये यो ही बने रहेगे? नही तो!

वर्ग-चेतना तीसरा चरण (पूँजीवाद)

पूँजीवाद विगत चार शताब्दियो मे अपने दो चरणो को पूरा करने के बाद अब तीसरे चरण को बढाता चला आ रहा है। पिछले दो चरण थे—औपनिवेशिक पूँजीवाद और औद्योगिक पूँजीवाद। इसका वर्तमान तीसरा चरण है—वैश्विक अथवा भूमण्डलीकृत पूँजीवाद।

(1) **औपनिवेशिक पूँजीवाद**—औपनिवेशिक पूँजीवाद का पहला शिकार बना भारत जैसा विशाल देश और रक्तपिपासु इग्लैण्ड जैसा एक बौना देश उसका क्रूरतम शिकारी। किन्तु इग्लैण्ड वालो की तरह दूसरे बौने देशो के वासियो को जैसे पुर्तगालियो, डचो और फ्रासीसियो को इतने बड़े भू-भाग मे घुसने कैसे दिया गया? इसका सीधा-सा उत्तर है कि सामन्ती क्षत्रपो ने मुगलो के केन्द्र को तोड़ा ही नही अपितु क्षेत्रीय शासक आपस मे एक-दूसरे से भिड़ कर एक दूसरे को मार-काट कर टूटते-बिखरते गए और विदेशी व्यापारी छल कपट लोभ-लालच तथा विश्वासघात से एक-दूसरे को उल्लू बना कर अपनी घुसपैठो मे कामयाब हो गए और यह महान् देश पिद्दी बनता गया बनाया जाता गया। इस तरह ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरह फ्रासीसी ईस्ट इण्डिया क और डच ईस्ट इण्डिया क ने भी अपनी दूकानदारियाँ स्थापित कर लीं। इन कम्पनियो की बिना पर उनके देशो मे आपस मे प्रतिस्पर्द्धात्मक खूनी लड़ाइयाँ शुरु हो गईं। डेढ़-दो सदियो की भीतरी और बाहरी लड़ाइयो के फलस्वरूप ब्रिटिश सत्ता मद्रास बिहार और बगाल आदि पर कब्जा करके भारत की सत्ता सँभालने मे कामयाब हो गई। अठारहवीं सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी के आरम्भ तक भारत पूर्णतया ब्रिटिश उपनिवेश के रूप मे परिवर्तित हो चुका था। लेकिन यह तो औपनिवेशिक सत्तातन्त्र का एक पहलू मात्र था। ब्रिटिश बुर्जुवा क्रान्ति की कामयाबी का भयकरतम पहलू तो वह आर्थिक और सरचनात्मक आक्रमण था जिसने सारे विश्व-जनगण को हिला कर रख दिया था।

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया के कारिन्दो ने भारत मे आकर मनमानी लूट-मार की यहाँ के वस्त्र (विशेष तौर पर मलमल के वस्त्र)-निर्माण मे लगे कारीगरो

के हाथ काटे, कुशल दस्तकारों को बेरहमी से कत्ल किया, धोखे मे रख कर उद्योग-धन्धा को बर्बाद किया। अग्रेज व्यापारियो ने भारत की अस्मिता को उसकी सभ्यता को, उसकी कला और सस्कृति को, उसक जीवन की प्रक्रिया को उसके ज्ञान और विज्ञान को एव यहाँ तक कि उसकी भाषा को भी तहस-नहस करके बुर्जुवा क्रान्ति की नीव डाली।

पूँजीवाद की व्यवस्था भारत के श्रमिको के खून आँसू और पसीने से निर्मित हुई। उन्होने यहाँ आकर यहाँ के कारीगरो के द्वारा बनाई गई वस्तुआ को न्यूनतम दामो पर खरीदा और वे कई बार तो यहाँ के व्यापारियो की माल से भरी नावो को लूट कर ले जाते थे और अन्यत्र उन चीजो और लूटे हुए मालो को मनमाने दामो पर बेच देते थे। इस तरह व अपनी सचित पूँजी का विस्तार करते गये।

वे व्यापार करने का बहाना बना कर भारत की सम्पदा को निर्लज्जता से लूटते थे और इग्लैण्ड को बहुमूल्य खजाने भेजते थे। दूसरा तरीका यह था कि भारत के रेशमी व सूती वस्त्र-माल को अपने देश मे आयात करने से रोक देते थे ताकि उनके घटिया माल को जबरन खपाया जा सके। भारत के उद्यागो को हर किसी भी तरीके से नष्ट करना और प्रतियोगिता के लायक न रहने देना उनका लक्ष्य बन गया था और इसमे वे कामयाब होते गए। भारत के बाजार को जोर-जबरदस्ती करके इग्लैण्ड के घटिया माल से पाट दिया गया। इससे भारत का उद्योग ठप्प हो गया।

रैयतबारी कानून से ग्राम समुदाय के किसान सरकारी जमीन के किराएदार हो गए। इस तरह ऊँचे किरायो की जमीन को मुनाफाखोरो और सूदखोरो ने खरीद लिया जिससे किसान बर्बाद हाते गए।

कालान्तर मे अग्रेजो ने भारत को एक ऐसा खेतिहर उपनिवेश बना दिया, जिसका काम ब्रिटेन को कच्चा माल सप्लाई करना और वहाँ से आए हुए तैयार माल को खरीदने को विवश होना हो गया। कई बार तो कच्चा माल भी मुफ्त मे भेज कर उसी से तैयार किए गए माल को मनचाहे दामो मे यहाँ के लोगो को बेच दते थे। भारत का कगाल करने म अग्रेजी सरकार का पूरा हाथ था।

भारत को ब्रिटिश सरकार और वहाँ के व्यापारी गिरोह ने कैसे विध्वस्त किया, इसके विस्तृत और स्पष्ट चित्र प सुन्दरलाल की पुस्तक भारत मे अग्रेजी राज , रजनी पामदत्त का आज का भारत', अयाध्यासिह द्वारा लिखित

औपनिवेशिक काल के भारतीय इतिहास' और नेहरूजी की 'विश्व-इतिहास की झलक आदि मे देखने को मिल सक्ते हैं। यहाँ तो न्यूनतम सकेतमात्र है।

वैसे तो सोलहवी सदी के शुरू मे ही स्पेन ने अमरीका का उपनिवेशन करके औपनिवेशिकता का आरम्भ कर दिया था। स्पेनी सोने को पाने के लिए ही वहाँ जा घुसे थे किन्तु बुर्जुवा क्रान्ति का श्रेय इग्लैण्ड को जाता है। सत्रहवीं सदी के बाद ब्रिटेन ने उत्तरी अमरीका मे अपने प्रथम उपनिवेश की स्थापना कर दी थी। लेकिन अठारहवी सदी तक चले उपनिवेश विरोधी सघर्षों मे जार्ज वाशिगटन ने ब्रिटिश शासन को समाप्त कर दिया।

डचो ने पुर्तगाली उपनिवेशो, जैसे अफ्रीका के दक्षिणी छोर पर केप उपनिवेश फारस की खाडी मे पुर्तगाली चौकियो और मलक्का उपनिवेश पर कब्जा कर लिया। फिर सत्रहवी सदी मे सुदूर पूर्व मे पैदा होने वाले डच औपनिवेशिक साम्राज्य का केन्द्र जावा था। डच कम्पनी ने जकार्ता के कुछ इलाके पर भी कब्जा कर लिया। कई कमजोर और पिछड़े हुए देशो की आबादी को हिसा और निर्मम दमन का शिकार बनाने के साथ-साथ डचो ने स्थानीय रजवाड़ो मे लड़ाई-झगड़े भड़काने के लिए पेचीदे षड्यन्त्र भी पैदा किए। इन षड्यन्त्रो से पूर्ण तरीको ने डचो को पहले स्थानीय शासको पर व्यापार तथा अफीम का एकाधिकार प्राप्त करने से सम्बन्धित सन्धियाँ थोपने और फिर अधिकाश मातरम और बन्तम को कम्पनी के अधिकार मे स्थित क्षेत्र मे मिला लेने मे समर्थ बना दिया। आगे चल कर मातरम जैसे शक्तिशाली राज्य का तुराकार्ता और जोगजकार्ता जैसे छोटे राज्यो मे विभाजन हो गया।

फ्रास की क्रान्तिकारी उथल-पुथल के बाद उन्नीसवी सदी के आरम्भ मे नेपोलियन के अधीन फ्रास एक सबसे बडी शक्ति के रूप मे प्रस्थापित हुआ। बेल्जियम हालैण्ड उत्तरी तथा मध्य इटली इलीपरिया और डालमेशिया अब फ्रासीसी साम्राज्य के अग थे। उत्तरी और मध्य इटली मे नेपोलियन ने एक इतालवी राज्य की स्थापना की जहाँ उसका सौतेला बेटा यूत्जेन बोहार्ने उसके प्रतिशासक की हैसियत से राज करता था। शेष सम्पूर्ण पश्चिमी तथा मध्य यूरोप के राज्य फ्रास के अधीनस्थ राज्य बन चुके थे। स्पेन के सिहासन पर नेपोलियन के भाई जोजेफ को आसीन कर दिया गया था। नेपोलियन ने अपने साले मार्शल म्यूरात को नेपल्स का राजा बना दिया। नेपोलियन खुद राइनबुन्द अर्थात् राइनी महासघ का, जिसमे अधिकाश पश्चिमी जर्मन राज्य सम्मिलित थे प्रधान बन गया। भूतपूर्व एशियाई प्रदेश के विभिन्न भागो से निर्मित वेस्टफालिया राज्य नेपोलियन के छोटे भाई जेरोम को दे दिया गया।

नेपोलियन द्वारा परास्त आस्ट्रिया, प्रशा तथा सैक्सनी अब उसके मित्र-राष्ट्र बन गये। रूस ने उसके साथ दोस्ताना सम्बन्ध बनाए रखा। 1809 ई तक नपोलियनी फ्रास व्यवहारत सम्पूर्ण यूरोप पर अपना वर्चस्व स्थापित कर चुका था।

नेपोलियन की सफलताओ का कारण यह था कि वह एक प्रतिभाशाली और अत्यन्त महत्त्वाकाक्षी युवक था। इसके अलावा उसने अपने ऐसे सहायको को साथ लिया था जो स्वय अद्भुत सेनानायक थे। इनमे दावू, नई म्यूरात, मसेन वेर्त्ये, लान तथा उसके अन्य सभी मार्शल स्वयमेव सेना का बखूबी सचालन कर सकते थे।

लेकिन जब नेपोलियन की महत्त्वाकाक्षाएँ हद को पार कर गईं तो यूरोप के अन्य देशो ने एक सहबन्ध कायम किया। फिर इन मित्र-देशो के साथ प्रशा, आस्ट्रिया और सैक्सनी आदि भी मिल गए। मित्र-राष्ट्रो के सहबन्ध ने नेपोलियन को पराजित कर उसकी आकाक्षाओ को मिट्टी मे मिला दिया।

(2) **औद्योगिक पूँजीवाद**—बहुत बडी पूँजी को सचित करने किसानो को अपनी जमीना से खदेड़ देने और इससे सस्ती श्रमशक्ति के पर्याप्त साधन पैदा कर लेने के फलस्वरूप अग्रेज पूँजीधारको के लिए अब अपने माल को खपाने के लिए घरेलू और विदेशी बाजार के विस्तार की जरूरत महसूस होने लगी।

इधर वैज्ञानिक आविष्कारो के विकास ने औद्योगिक क्रान्ति को एक और ऊँची मजिल पर पहुँचा दिया। यान्त्रिक मशीना (स्पिनिग और वीविंग मशीनो) ने चरखो और हथकरघो के उद्योग को पछाड दिया था, क्योकि बडी-बड़ी मशीनी फैक्टरियाँ माल पैदा करने की प्रतियोगिता म किसी को टिकने नही दे रही थीं। भारत और अमरीका से कपास की प्रचुर मात्रा मिल रही थी। कुदरती तौर पर कपडा उद्योग की इस तीव्र प्रगति ने अन्य उद्योगो को बहुत पीछे छोड़ दिया और उनके लिए भी अब अतिशीघ्र मशीनो का उपयोग आवश्यक हो गया।

ई 1784 मे ग्रीनाक निवासी इजीनियर जेम्स वाट ने भाप से चलने वाले इजन का आविष्कार कर दिया। इसके विविध रूपो का शीघ्र ही कई अलग-अलग उद्योगो मे उपयोग होने लगा। इसने माल के एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने और थोडे समय मे यात्रा करने मे एक क्रान्तिकारी कदम उठाने की पहल कर डाली। 1807 ई मे राबर्ट फुल्टन ने पहले भाप से चलने वाले जलयान का आविष्कार करके समुद्री यात्रा का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इस

जलयान ने अमरीका मे हड्सन नदी मे पहली यात्रा की। फिर ई 1814 मे जार्ज स्टीफेसन ने पहला लोकोमोटिव इजन डिजाइन किया और कुछ सालो के बाद ही पहली रेल का निर्माण हुआ। यह आगे के औद्योगिक विकास मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। इग्लैण्ड की इस औद्योगिक क्रान्ति ने बाकी सब क्षेत्रो मे सम्भाव्य औद्योगिक विकास पर जबरदस्त प्रभाव पैदा किया। आगे चल कर यूरोप और उत्तरी अमरीका के लगभग सारे देशो को इसी प्रक्रिया को अपनाने के लिए प्रेरित होना पडा।

अठारहवी सदी के अन्त और उन्नीसवी सदी के शुरू मे ब्रिटेन यूरोप की सर्वप्रमुख औद्योगिक तथा वाणिज्यिक शक्ति बन चुका था। इग्लैण्ड ससार की सबसे बडी औद्योगिक हस्ती तो था ही साथ ही वह एक ऐसा एकमात्र देश बन गया था जिसमे शहरी आबादी देहाती आबादी की अपेक्षा ज्यादा थी। इस समय तक इग्लैण्ड मे लन्दन के अलावा अन्य बडे नगर भी पैदा हो चुके थे जैसे बर्मिघम मैनचेस्टर और न्यू कासेल। अपने समय के लिहाज से इन नगरो की आबादी बहुत अधिक थी। किसान जिनकी सख्या कुछ ही समय पहले तक बहुत अधिक थी अब वह घटते-घटते इस सीमा तक पहुँच चुकी थी कि लगभग उसका लोप हो चुका था और वह शहरी आबादी का अग बन चुकी थी।

औद्योगिक विकास का एक परिणाम यह हुआ कि नगरवासियो मे कारखानो मे काम करने वाले मजदूरो की सख्या लगातार बढती चली गई। औद्योगिक मजदूरो के वर्ग अर्थात् सर्वहारा वर्ग का उद्‌भव औद्योगिक पूँजीवादी क्रान्ति का एक सबसे निर्णायक परिणाम था। सर्वहारा के पास उन हाथो के सिवा और कुछ न था जिनसे वे काम करते थे। गरीबी ने उन्हे अत्यन्त भयानक अवस्थाओ मे काम करने को मजबूर कर दिया था। पूँजीपति मजदूरो का भयकर निष्ठुरता से शोषण किया करते थे। 16-18 घण्टे का कार्यदिवस बना रखा था। स्त्रियो और बालको के श्रम का भी ज्यादा सस्ते मे व्यापक रूप से उपयोग किया जाता था। इस अमर्यादित शोषण से मजदूरो के शारीरिक और मानसिक विकास पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पडता था। किन्तु उस समय तक श्रमिको को परिस्थितियाँ बदलने के लिए सघर्ष करने का न तो अनुभव था और न ही कोई आन्दोलनात्मक प्रेरक शक्ति।

अब यूरोप मे सामन्ती सरचना को कायम रख सकने और जीवित रख सकने की कोई भी स्थिति कायम नहीं रह पायी थी। न कोई पवित्र सहबन्ध, न ही यूरोपीय राजतन्त्र और न ही जारशाही निरकुश तानाशाही मे औद्योगिक क्रान्ति के विकास को अवरुद्ध करने की क्षमता बाकी रह गई थी।

मशीनें हर कहीं दस्तकारियो का स्थान ले रही थी। नित नये वैज्ञानिक आविष्कार शारीरिक श्रम के महत्त्व को कम करते जा रहे थे। तकनीको ने समयावधि को काफी कम कर दिया था। दूरियाँ कम हो गई थी। हर उत्पादन के उपकरण बदल चुके थे। उन्होने उत्पादन प्रक्रिया और खास तौर पर उत्पादक शक्तियो और उत्पादक सम्बन्धो मे मौलिक परिवर्तन कर दिये थे। समग्र उत्पादन प्रणाली ने सामाजिक सरचना राजनीतिक गतिविधियो और यहाँ तक कि कला, साहित्य और चिन्तन-प्रकारो पर भी परिवर्तनकारी प्रभाव पैदा कर दिया।

उपनिवेशित राज्यो मे स्वतन्त्रता आन्दोलनो ने तीव्रता से अपना असर दिखाना चालू कर दिया था। सघर्षो, सहबन्धो युद्धो आदि का स्वरूप बदलने लगा था। जिन्होने उपनिवेश कायम किए थे उनमे से कई उन्हे कायम रखने मे नाकाबिल साबित हो चुके थे। रणनीतिया मे बुनियादी बदलाव आ चुके थे।

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध म इग्लेण्ड मे शुरु हो चुकी औद्योगिक क्रान्ति ने उन्नीसवीं सदी के आरम्भ मे यूरोप के अन्य देशो को तीव्र गति से प्रभावित कर दिया। फ्रास जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया और रूस मे औद्योगिक क्रान्तियो का व्यापक प्रसार होने लगा। अटलाण्टिक के उस पार के नये गणराज्य- सयुक्त राज्य अमरीका मे बड़ी तेजी से औद्योगीकरण का फैलाव होने लगा।

विशाल औद्योगिक नगरो के पैदा होने से मजदूरो का भारी सख्या म सकेन्द्रण होने लगा। औद्योगिक पूँजीपति वर्ग के साथ औद्योगिक मजदूर वर्ग के विकास की स्थिति साफ तौर पर दिखाई देने लगी। दो प्रकार के आवास, दो प्रकार के पहनावे दो प्रकार के रहन-सहन के तरीक दो प्रकार के व्यवहार तथा दो प्रकार के गठजोड़ दिखाई देने लगे। सोच-समझ म भी दो ही तरह की स्थितियाँ पैदा हो गई। ब्रिटेन की तरह फ्रास जर्मनी और सयुक्त राज्य अमरीका मे दो सामाजिक वर्ग मुख्य रूप से उभर कर सामने आने लगे थे। सामन्तो का पुराना स्वर्ग ध्वसावशेष दिखाई देने लगा था।

फ्रास की 1830 ई की क्रान्ति, इग्लैण्ड का 1832 ई का सुधार विधेयक फ्रास मे 1831 और 1834 ई बलवे इग्लैण्ड का चार्टिस्ट आन्दोलन और प्रबोधन काल के काल्पनिक समाजवाद के चिन्तको—सेण्ट साइमन (1760-1825 ई), फूरिये (1772-1837 ई और राबर्ट ओवेन (1771-1858 ई) की गतिविधियो और प्रवृत्तियो ने क्रियाओ और प्रतिक्रियाओ, दोनो के विभिन्न प्रवाहो का रूप धारण कर लिया।

इन सबके बावजूद इग्लैण्ड का चार्टिस्ट आन्दोलन इतिहास मे सर्वहारा का सर्वप्रथम व्यापक राजनीतिक आन्दोलन था और वह एक प्रेरणादायक उदाहरण साबित हुआ। चार्टिस्ट आन्दोलन के बाद मजदूर वर्ग के मुक्ति सघर्ष ने एक नयी और अधिक उन्नत मजिल मे प्रवेश किया। इस आन्दोलन के नेता श्रमिक वर्ग के योग्य और समर्पित समर्थक ओ ब्रायन फीयरगस ओकॉनर जी जे हार्नी और एर्नेस्ट जोन्स थे।

यूटोपियाई समाजवाद (काल्पनिक समाजवाद) के प्रतिपादक सेण्ट साइमन फूरिये और ओवेन ने पूँजीवादी प्रणाली की कठोर और यथार्थवादी आलोचना की और भविष्य के न्यायपूर्ण समाज की अवधारणा का निरूपण किया। उनके विचारो का सर्वाधिक महत्त्व इस बात मे है कि उन्होने जनसाधारण का अपने-आप को पूँजीवादी दासता की बेड़ियो से मुक्त करने का आह्वान किया। लेकिन वे बेहतर समाज का निर्माण करने के सही उपायो को नहीं बता सके। उनके सुझाव तर्कसगत और व्यावहारिक नहीं थे। उन्हे तो इस बात का भी एहसास नही था कि कौन-सा वर्ग कौन-सी सामाजिक शक्ति ससार का रूपान्तरण, उत्पीड़न का अन्त और मानव-जाति को शोषण तथा उसके साथ चलने वाली बुराइयो से निजात दिलाने की स्थिति मे है। वे स्वय को काल्पनिक समतावाद से अलग नहीं कर सके।

अठारहवी सदी के अन्त और उन्नीसवी सदी के आरम्भ मे जर्मनी मे जिन दो महान् साहित्यकारो का प्रभाव देखने को मिला वे थे—गेटे (1749-1832 ई) और शिलर (1759-1805 ई)। इसी काल मे शेलिंग (1775-1854 ई) और हेगेल (1770-1831 ई) जैसे महान् दार्शनिको ने जर्मनी के दर्शन पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। हेगेल भाववादी या आदर्शवादी (आइडियलिस्ट) थे और अन्त तक बने रहे किन्तु उन्होने दर्शन के चिन्तन म द्वन्द्वात्मक पद्धति (डाइलैक्टिकल मैथड) का उपयोग किया। उनकी इस द्वन्द्वात्मक पद्धति ने अपने युग के बौद्धिक जगत् पर बहुत गहरा प्रभाव डाला।

इन यूटोपियाई समाजवादियो का एक सगठन भी था जिसका अपना एक व्यापक प्रभाव भी था। इसका बहुप्रचलित नारा था—'सारे लोग—भाई-भाई' (भारत मे वसुधैव कुटुम्बकम् के सूत्र की तरह)। सामान्य दृष्टि से यह लगता था कि यह मानव मात्र के कल्याण का आह्वान है जिससे कौन असहमत हो सकता है। किन्तु जमीनी हकीकत इससे काफी अलग थी। उसके लिए यह अनुकूल नही दिखाई दे रहा था क्योकि मानव-समाज मे एक हिस्सा जो बहुसख्यक था और वस्तुओ को पैदा करता था तो दूसरा अल्पसख्यक

मालिकाना हक लिए एव बिना हाथ हिलाए उन वस्तुओ का उपभोग भी करता था और उन्हे शोषण के साधन के रूप मे काम मे भी लेता था। यथार्थ मे यूटोपियाई—'सारे लोग—भाई-भाई' का—नारा इस तथ्य को नजरअन्दाज करता था कि जागीरदारो और भू-दासो या छोटे किसानो या खेतिहर मजदूरो पूँजीपतियो और कारखाना मजदूरो या सर्वहारा के पारस्परिक हित असमान या विषम होते हैं, क्योकि उनमे शोषक और शोषित के प्रतिकूलात्मक सम्बन्ध हैं—इसलिए दोनो मे भाई-भाई' का स्नेहपूर्ण सम्बन्ध होना सम्भव हो ही नही सकता। इसी प्रकार उपनिवेशिको तथा उपनिवेशितो मे भाईचारे की धारणा स्वय मे त्रुटिपूर्ण है।

'सारे लोग—भाई-भाई एक ऐसा नारा था जो वास्तविक स्थिति पर पर्दा डालने या मुलम्मेबाजी की कलाबाजी करता था। इस नारे से भयकर भ्रान्तियाँ पैदा होती थीं। साथ ही बड़बोले और हाथ ऊँचे करके लफ्फाजी कग्ने वाले भाषणबाजो को सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता था। शोषक वर्ग इसके तत्त्वार्थ को भली भाँति समझता था कि यह हमारा सबसे कारगर वैचारिक उपकरण है। सूफी सन्तो भक्त मण्डलियो समता या समरसता के व्याख्यान झाड़ने वाल राजनेताओ और शोषकीय ससद के दिग्गज बहसबाजो के लिए यह एक ऐसा मूलमन्त्र था जो तकियाकलाम बन चुका था। इस नारे मे भगवान् की समदृष्टि' न्यायप्रणाली मे निरपेक्षता , व्यवसाय करने का समान अधिकार' अथवा 'काम करने का समान अधिकार' जैसे आवरण समाहित हैं।

वर्ग-चेतना का विकास—सबसे पहले अग्रज अर्थशास्त्री एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो ने समाज मे तीन वर्गों की चर्चा की—पूँजीपति जमीदार और मजदूर। ये मानते थे कि इनमे भेद का आधार उनकी आमदनी का स्रोत है। पूँजीपति को मुनाफा मिलता है, जमीदार को लगान और मजदूरो को उनकी मजदूरी। उन्होने अर्थव्यवस्था के प्रसग मे वर्गों की स्थिति का जो विश्लेषण किया वह नि सन्देह सामाजिक चिन्तन की एक बड़ी उपलब्धि थी। लेकिन वे वर्ग-विभाजन और उसके परिणामस्वरूप होने वाली सामाजिक असमानता को उचित और अनिवार्य मानते थे। वे वर्ग-विषमता और वर्गभेद की द्वन्द्वात्मकता को नही पहचान सके। इसकी बजाय उन्होने उसे वितरण सिद्धान्त' के रूप मे प्रतिपादित किया।

दूसरी ओर फ्रासीसी इतिहासकारो, जैसे त्येरी, गिजो और मिन्ये ने फ्रासीसी क्रान्ति के इतिहास को 'वर्गों के सघर्ष' के रूप मे अकित किया। उनका विश्वास था कि फ्रासीसी क्रान्ति का मार्ग भूमि के स्वामित्व के लिए वर्गों

के सघर्ष द्वारा निर्धारित हुआ है। उन्होने वर्गों के सघर्ष का एक ऐतिहासिक वर्णन पेश किया परन्तु साथ ही यह घोषणा भी कर दी कि यह सघर्ष केवल विगत समय तक ही सीमित है। उन्होने यह भी कह दिया कि यह समकालीन पूँजीपतियो के विरुद्ध मजदूरो का सघर्ष नाजायज और गैर-जरूरी है।

लेकिन कार्ल मार्क्स ने वर्ग और वर्ग-सघर्ष के बारे मे तीन सूत्रो मे इस प्रकार अपने सिद्धान्त को प्रस्तुत किया—(1) वर्गों का अस्तित्व उत्पादन के विकास के विशेष ऐतिहासिक काल-खण्डो के साथ बँधा हुआ है (2) वर्ग-सघर्ष लाजिमी तौर पर सर्वहारा के अधिनायकत्व की दिशा की ओर ले जाता है और (3) यह अधिनायकत्व स्वय सभी वर्गों के उन्मूलन और वर्गहीन समाज की ओर सक्रमण-मात्र है।

कार्ल मार्क्स ने ही सबसे पहले वर्गों की भौतिकवादी व्याख्या करते हुए यह बताया कि वर्गों की उत्पत्ति और अस्तित्व का आधार विकासमान उत्पादन की आवश्यकताएँ हैं। उन्होने ही यह साबित किया कि वर्ग चिरस्थायी नही हैं बल्कि उनकी उत्पत्ति आवश्यकतानुसार होती है और उनका मिट जाना अनिवार्य है। यह मार्क्स का वर्गों के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक और द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण था। इसीलिए कार्ल मार्क्स के अनुसन्धान को द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद कहा जाता है।

द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रणेता ने यूटोपियाई समाजवादियो के नारे सब लोग—भाई-भाई को सिरे से खारिज कर कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा-पत्र मे इसकी एवज मे जो आह्वान किया वह था— दुनिया-भर के मेहनतकशो एक हो। उसकी अनुगूँज विश्व-भर मे शोषक वर्ग को कम्पायमान कर गयी।

वह कार्ल मार्क्स ही था जिसने यह कह कर विश्व-इतिहास की धारा ही बदल दी कि मानव-इतिहास वर्ग-सघर्ष का ही लेखा-जोखा है । इसने वर्ग-चेतना के विकास मे एक और प्रेरक शक्ति पैदा कर दी। मार्क्स की वर्ग-सघर्ष अथवा वर्ग-सघर्ष की चेतना का आधार वस्तुगत सत्य है द्वन्द्वात्मक भौतिक घटनाचक्र है।

कार्ल मार्क्स के गहन अध्ययन समकालीन क्रान्तियो के आकलन घटनाओ के प्रत्येक पहलू की निर्मम आलोचना तथा सश्रम जीवन के कटु अनुभव ने जो निष्कर्ष दिए उनके पक्ष-विपक्ष मे चाहे जो कहा जाय किन्तु उन्हे नजरअन्दाज नही किया जा सकता। अनेक प्रकारो के भटकावो का विचारक अन्तत उनके सारतत्त्व का कायल होने को विवश हो जाता है।

वर्ग-चेतना के विकास मे मार्क्स-एगेल्स के युग्म का इतना महत्त्वपूर्ण योगदान है कि जिसका कोई सानी नही। इसका मुख्य कारण है इस मित्रद्वयी द्वारा रचित 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र', जिसे सक्षेप मे 'कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र' कहते हैं। इस घोषणा-पत्र की रचना का आधार यूरोप और विशेषकर जर्मनी मे, पूँजीवाद के विकास के फलस्वरूप सर्वहारा के आन्दोलन का उदय होना था। इसकी पृष्ठभूमि पर नजर डाले तो वह निम्नाकित थी—

पेरिस मे सन् 1832 मे मेहनतकशो की बस्तियों मे उभरे जून-विद्रोह के दौरान 'लाल झण्डे को प्रतीक के रूप मे अपनाया जाना जा आगे चल कर दुनिया-भर की 'कम्युनिस्ट पार्टियो' मजदूर पार्टियो' समाजवादी पार्टियो' और सर्वव्यापी श्रमजीवी आन्दोलना का प्रतीक चिह्न (झण्डा या बैनर) बन गया। इस लाल झण्डे ने वर्ग-चेतना के उपाकाल का सकेत दिया। सन् 1836 मे सर्वहारा वर्ग ने 'आउटलॉज लीग' (ई 1834 मे स्थापित) से अलग हट कर 'लीग ऑफ दी जस्ट' की स्थापना की जो क्रमश विकसित होता हुआ अन्तरराष्ट्रीय सगठन बन गया जिसका प्रमुख कन्द्र लन्दन मे स्थानान्तरित कर दिया गया। पहले-पहल तो इस पर काल्पनिक समाजवादियो का प्रभाव था। मार्क्स-एगेल्स पहले तो इससे अलग रहे, किन्तु जब उन्हे यह आश्वासन दिया गया कि वे फेडरेशन की आम काग्रेस के सामने अपना घोषणा-पत्र पेश कर सकते है तो सन् 1847 म लन्दन मे हुई काग्रेस मे एगेल्स शामिल हुए (मार्क्स बीमार होने के कारण अनुपस्थित रहे लेकिन एगेल्स के साथ अपनी राय भेज दी)। काग्रेस मे एगेल्स द्वारा प्रस्तुत मार्क्स-एगेल्स द्वारा प्रस्तुत रूप-रेखा' को आधार मान कर लीग ऑफ जस्ट' का नाम बदल कर कम्युनिस्ट लीग' रख दिया गया और सब लोग—भाई-भाई के आदर्श वाक्य के स्थान पर दुनिया के मेहनतकशो एक हो' के आह्वान को अपना लिया गया। इस रूपरेखा से अब इस अन्तरराष्ट्रीय सगठन का वर्ग-चरित्र स्पष्ट हो गया और इसकी अन्तर्वस्तु का केन्द्र सर्वहारा की वर्ग-चेतना के रूप मे उभर कर सामने आ गया।

लन्दन मे नवम्बर, 1847 ई मे लीग की दूसरी काग्रेस मे मार्क्स स्वय शामिल हुए। इसम मार्क्स और एगेल्स को लीग का घोषणा-पत्र तैयार करने का काम सौंपा गया, जिसे दोनो ने बखूबी पूरा किया (अन्तिम भाग अकेले मार्क्स द्वारा लिखा गया)। फरवरी सन् 1848 मे 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र' प्रकाशित हुआ। यही वह विश्व-इतिहास का पहला दस्तावेज था

जो आज तक कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र' के नाम से सुपरिचित है। यह इतना प्रभावशाली साबित हुआ कि शीघ्र ही दुनिया की लगभग सारी प्रमुख भाषाओ मे इसके अनुवाद तैयार होकर प्रकाशित हो गए और हर भाषा के कई सस्करण निकलते गए। इस छोटी-सी पुस्तिका ने जहाँ वर्ग-चेतना को विश्वव्यापी प्रसार दिया, वही शोषक वर्ग को थर्रा कर आगाह कर दिया कि तुम्हारे ही उत्पादक स्थलो मे हथौडा चलाने वाला सर्वहारा न केवल तुम्हारे मुकाबले मे खडा हो चुका है अपितु तुम्हारा वह वर्ग-प्रतिपक्ष तुम्हारी शोषण-सत्ता को विध्वस्त करने मे सक्षम होने वाला साबित होने को है। घोषणा के त्रिसूत्री लक्ष्य (वर्ग-चेतना की ऐतिहासिक भूमिका सर्वहारा के अधिनायकत्त्व की दिशा और अन्तत वर्गविहीन समाज की सरचना) पिछले पृष्ठ मे अकित किए जा चुके हैं।

सन् 1848 मे फ्रास, आस्ट्रिया जर्मनी पुर्तगाल इटली और यूरोप के अन्य भागो मे भी सामन्ती व्यवस्थाओ के विरुद्ध पूँजीवादी क्रान्तियाँ सम्पन्न हुईं। इसका एक नतीजा था औद्योगिक शक्तियो का विकास तो साथ ही इसका दूसरा नतीजा था सर्वहारा सगठनो और आन्दोलनो का विस्तार। औद्योगिक क्रान्ति के कारणो का तात्कालिक कारण था—सन् 1847 का आर्थिक सकट। यद्यपि सर्वहारा की वर्ग-चेतना मे सघर्षशीलता का विस्तार तो हुआ, किन्तु अभी तक उसमे परिपक्वता और अधिक गम्भीरता की अपेक्षा थी।

सर्वहारा-चेतना के विकास की वजह से ट्रेड यूनियनो के गठन मे अच्छा-खासा विस्तार हुआ। ब्रिटेन मे अनेक ट्रेड यूनियने बनी इसी प्रकार अमरीका जर्मनी व अन्य देशो मे भी यूनियने गठित की गईं। इसी अवधि मे (उन्नीसवी सदी के मध्य मे) विभिन्न प्रकार की विचारधाराओ के नेताओ ने अन्तरराष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक सगठन के निर्माण के लिए अपील की। जिन्हे अपील की गई थी उनमे इण्टरनेशनल कमिटी, क्रान्तिकारी कम्युन जर्मन कम्युनिस्ट सोसाइटी इग्लिश चार्टिस्ट सोसाइटी पोलेण्ड की सोशलिस्ट सोसाइटी व कई अन्य देशो के ऐसे ही ग्रुपो को शामिल किया गया था। अनेक कोशिशो के परिणामस्वरूप लन्दन मे 28 सितम्बर, 1864 को प्रथम इण्टरनेशनल' की स्थापना हुई, जिसमे इग्लैण्ड फ्रास जर्मनी व कुछ अन्य देशो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया।

प्रथम इण्टरनेशनल का मुख्य कार्यालय लन्दन मे रखा गया। इसकी एक जनरल काउसिल चुनी गई जिसमे कार्ल मार्क्स भी थे। इस केन्द्रीय परिषद् की दिनाक 5 अक्टूबर 1864 को बैठक बुलाई गई जिसमे जार्ज

औडगर को अध्यक्ष और विलियम क्रेमर को अवैतनिक महासचिव चुना गया। सचिव मण्डल मे मार्क्स जर्मनी के लिए सचिव थे।

इस इण्टरनेशनल का कार्यक्रम कार्ल मार्क्स ने लिखा था, जिसे उद्घाटन वक्तव्य के रूप मे प्रस्तुत किया गया। यह दस्तावेज भी एक महान् साहित्यिक धरोहर के रूप मे विख्यात हुआ।

बाकुनिन (अराजकतावादी समाजवादी) अपने अराजकतावादी समाज-वादियो के साथ सन् 1868 मे इण्टरनेशनल मे प्रवेश पाने मे सफल हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि उनमे और मार्क्सवादियो मे द्वन्द्व शुरू हा गया।

इसी अवधि के दौरान जर्मनी और फ्रास मे युद्ध छिड गया और जर्मनी की सेना पेरिस के निकट पहुँची तब फ्रास का पूँजीवादी गणतन्त्र आत्मसमर्पण करने को तैयार हो गया। पेरिस का सर्वहारा इस चाल को समझ गया और उसने 18 मार्च, 1871 को विद्रोह कर दिया। होटल द वील पर लाल झण्डा फहरा दिया गया और नेशनल गार्ड की केन्द्रीय समिति अस्थायी सरकार के रूप मे काम करने लगी। पूँजीवादी सरकार शहर छोड कर भाग गयी। इतिहास की इस घटना को 'पेरिस कम्यून' कहा गया। यह सर्वहारा द्वारा पहली बार सत्ता पर काबिज होना था। 92 व्यक्तियो के कम्यून ने 9 व्यक्तियो की कार्यकारिणी चुनी। यह एक प्रकार का मन्त्रिमण्डल था। हरेक को विभाग बाँट दिए गए और एक को अध्यक्ष बना दिया गया। इस कम्यून ने 72 दिन तक काम किया और कई प्रगतिशील कदम उठाए, जैसे सभी अधिकारियो और कर्मचारियो क वेतन मजदूरो के वेतन के बराबर कर दिए। किन्तु फ्रास और जर्मनी की सयुक्त सेना ने कम्यून को कुचल दिया।

कार्ल मार्क्स ने पेरिस कम्यून की घटना के इस पहलू को घोषणा-पत्र की धारणा के अनुकूल बताया कि सर्वहारा सत्ता पर काबिज होने की सम्भावना व्यक्त करता है, किन्तु वह पूर्व-तैयारी, कार्यक्रम, सगठन की परिपक्वता तथा सबसे बढ कर जब तक पूँजीवादी प्रशासन को पूरी तरह ध्वस्त कर नया तन्त्र स्थापित न कर दे, तब तक स्थायी तौर पर अपनी सरचना कायम नहीं रख सकता।

सन् 1876 मे निर्णय लेकर इण्टरनेशनल को समाप्त कर दिया गया।

मजदूरो के सघर्षो का पहला विकास वह था जब उन्होने 16 घण्टे प्रतिदिन काम करने के विरुद्ध हड़ताले करके बुर्जुवाजी को 10 घण्टे के कार्यदिवस की माँग मानने को विवश किया। कार्ल मार्क्स ने इसे बड़ी उपलब्धि

माना। दूसरी मजिल थी सन् 1871 के पेरिस कम्यून की घटना और तीसरी मजिल थी शिकागो मे सन् 1886 मे 8 घण्टे के कार्यदिवस की माँग मनवाने हेतु हजारो मजदूरो का मैदान मे उतर कर अपनी एकजुटता का प्रभावशाली प्रदर्शन करना तथा सघर्ष का बिगुल बजाना।

सन् 1881 मे अमरीका और कनाडा मे श्रमिको ने एक मजदूर सघ की स्थापना की जिसे सन् 1886 मे वहॉ की ट्रेड यूनियन ने अमरीकी श्रमसघ नाम दे दिया। इसने मजदूर आन्दोलन मे प्रमुख भूमिका अदा करना शुरू कर दिया। इसी साल उसने अपनी काग्रेस मे आठ घण्टे का कार्यदिवस लागू किए जाने के बारे मे एक ऐतिहासिक प्रस्ताव स्वीकृत किया। ट्रेड यूनियनो को इस प्रस्ताव के अनुसार एक मई 1886 से कानून बनवाने के लिए कार्यवाही करने का जिम्मा सौपा गया।

अखिल अमरीकी मई दिवस हडताल और प्रदर्शनो की तैयारी सबसे बडे पैमाने पर देश के औद्योगिक केन्द्र शिकागो मे हुई। यह शहर सक्रिय मजदूर आन्दोलन तथा अपनी जुझारू परम्पराओ के लिए सुप्रसिद्ध था।

दूसरी तरफ पूँजीपति भी पहली मई के बारे मे सचेत रूप से तैयारी कर रहे थे और खास कर शिकागो मे जो उनका सबसे बडा गढ था। नेशनल गार्ड घुडसवार सैनिक पुलिस तथा शेरिफ के सहायक हथियारबन्द दस्ते थे। वे आदेशो की प्रतीक्षा कर रहे थे। बुर्जुवा प्रेस ने मजदूर आन्दोलन के खिलाफ धुऑधार प्रचार करना चालू कर दिया। शिकागो मेल ने अपने अग्रलेख मे लिखा कि दो खतरनाक हत्यारे दूसरो की पीठ पर छुरा भोकने के लिए शहर मे खुले घूम रहे है। उनके नाम हैं एल्बर्ट पार्सन्स और अगस्त श्पीस। अन्य अखबारो ने भी अलग-अलग तरीके से दुष्प्रचार किया।

लेकिन पहली मई को 5 लाख मजदूरो ने हडताल की और प्रदर्शन किया। 3 मई को इसे कुचलने के लिए किसी के द्वारा उकसाने के मकसद से बम फिकवा दिया गया जिससे एक पुलिस वाला मारा गया। फिर रक्तपात का नगा नाच हुआ। इस क्रूर दमन की खबरे ज्योही दूर-दूर तक फैली दुनिया-भर के मजदूरो ने तत्काल सघर्षात्मक कदम उठाने की चेतावनी दे दी।

आन्दोलनकारियो ने व्यवस्थित रूप मे आन्दोलन चलाया। किन्तु बाद मे पुलिस ने सात को षड्यन्त्रकारी घोषित कर पकड लिया जिनमे श्पीस फील्डन फिशर एगेल लाइग श्वाब तथा नेवे थे पार्सन्स आठवे व्यक्ति थे जिसने अपने साथियो की सहानुभूति मे आत्म-समर्पण कर दिया। सात को मौत की सजा सुनाई गई और एक को पन्द्रह साल की सजा।

इस पर अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग ने एकजुटता का आन्दोलन छेड दिया। उन्होने हड़तालियो की माँग मानने और उनकी सजाएँ वापस लेने की अपील की।

सन् 1891 मे दूसरे इण्टरनेशनल की ब्रूसेल्स काग्रेस मे यह प्रस्ताव पारित किया गया कि शिकागो के सर्वहारा-मई-आन्दोलन मे मजदूर शहीदो की याद मे हर देश मे प्रत्येक पहली मई को 'मई दिवस या 'अन्तरराष्ट्रीय मजदूर दिवस के रूप मे जोरदार प्रदर्शन करके मनाया जाय।

शिकागो के मजदूरो के मई सघर्ष के दो परिणाम सामने आए—

1 कुछ समयावधि मे अनेक देशो ने 8 घण्टे कार्यदिवस की माँग स्वीकार कर ली तथा लागू भी कर दी।

2 उन्नीसवीं सदी का अन्त होने से पहले (1893-1898 ई के बीच) बहुत-से देशो मे मजदूर यूनियनो ने लाल झण्डे और मशाले लिए मई दिवस' मनाने के लिए लम्बे-लम्बे जुलूस निकाले और इसे हर साल एक जीवन्त परम्परा बना दिया। तब से लेकर अब तक प्रत्यक्र देश मे मई दिवस' अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा दिवस' के रूप मे मनाया जा रहा है।

उपनिवेशी सत्ताओ के विरुद्ध स्वतन्त्रता सग्राम का आरम्भ—एशिया और उत्तरी अफ्रीका के देशा मे विदेशी शोषण और उत्पीड़न से वहाँ के जनसाधारण मे प्रतिरोध की भावना पैदा होने लगी, जिससे सघर्ष की स्थिति पैदा हो गई। यह सघर्ष विदेशी उपनिवेशवादियो की नीतियो के विरुद्ध था। सन् 1857 का प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम इसका ज्वलन्त उदाहरण है जो 1859 ई तक चला। 17 मई, 1857 को मेरठ मे आरम्भ होने वाले सग्राम की आग शीघ्र ही फैल गई। यह जन-विद्रोह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सैनिक अफसरो की क्रूरता के खिलाफ खुली बगावत थी। जिसम भारतीय सैनिको सामन्ती विद्रोहियो, किसानो और आम लोगो की सहभागीदारी थी।

सग्रामियो की दाआब की शहरी आबादी न विद्रोह मे सक्रिय भूमिका अदा की। 21 मई को अलीगढ, 31 मई को बरेली और लखनऊ, 4 जून को कानपुर और 6 जून का इलाहाबाद को अग्रेजी शासन से स्वतन्त्र करा दिया गया और अपनी सरकारे कायम कर दीं। इसमे मगल पाण्डे, ताँत्या टोप झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के अलावा सभी जातियो के सैनिको, किसानो और ग्रामीणो ने भाग लिया। बहादुरशाह जफर को पुन बादशाह घोषित कर दिया। सबसे पहले कार्ल मार्क्स ने भारत मे विद्रोह' शीर्षक लेख मे इसे 'जन-विद्रोह' की

सज्ञा दी जबकि अग्रेज इसे 'गदर' कहते रहे और कुछ अन्य इसे सामन्ती या सैनिक बगावत' मान रहे थे। कुछ अरसे बाद ब्रिटिश उपनिवेशवादी सत्ता ने इसे बेरहमी से कुचल दिया।

सन् 1885 मे काग्रेस नाम के प्रथम राजनीतिक दल की स्थापना के बाद से व्यवस्थित रूप से उपनिवेशवाद विरोधी स्वतन्त्रता सग्राम का आरम्भ हुआ जो बीसवी सदी के मध्य तक कई प्रकारान्तरो मे चलता रहा। इसी प्रकार एशिया और उत्तरी अफ्रीका के सभी देशो मे जनसाधारण की लगातार गिरती हालत ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि जनसघर्षों का छिड़ना आवश्यक हो गया था। यह विदेशी उपनिवेशवादियो के विरुद्ध लक्षित था। देशी सामन्तो ने उपनिवेशवादी सत्ताओ का सदा ही पक्ष लिया। और इतना ही नही अपनी टुकडियो और पुलिस दलो को लगा कर स्वतन्त्रता के पक्षधरो का दमन करने मे स्वय बढ-चढ कर हिस्सा लिया। स्वतन्त्रता सेनानियो को तरह-तरह से उत्पीडित किया गया।

लेकिन वह उपनिवेशवाद के विरुद्ध का शुरुआती दौर था जिसका विकास कई रूपो मे होता रहा। भूमिगत क्रान्तिकारी कार्रवाइयाँ सत्याग्रह हडताले, सशस्त्र सगठनो का गठन किसान और मजदूरो के आन्दोलन पुनरुत्थानवादी हलचले राष्ट्रवादी और साम्यवादी-समाजवादी सरगरमियो का आरम्भ तथा पेशेवार विरोध प्रदर्शन जैसी गतिविधियो का विकास होता रहा है।

सारी हलचलो से उपनिवेशवादी सत्ताओ के लिए यह अन्दाज लगाना सहज हो गया कि अब यह व्यवस्था अधिक समय तक जीवित नही रखी जा सकती।

लगभग एक शताब्दी तक जगह-जगह उपनिवेशवाद विरोधी स्वतन्त्रता सग्रामो का विकास होता गया। अन्त मे उपनिवेशवादी सत्ताओ का हटना लाजिमी हो गया।

विश्व-बाजारो के पुनर्विभाजन की प्रक्रिया

(प्रथम विश्वयुद्ध सन् 1914-1918)

उपनिवेशवादी ब्रिटेन फ्रास, जर्मनी जापान और अमेरिका आदि ने विश्व का पहली बार विभाजन कर औद्योगिक रूप से अविकसित देशो को पराधीन कर दिया था किन्तु औद्योगिक विकास के दूसरे चरण मे दुनिया के बाजारो पर बन्दर-बाँट करने अथवा बडे पूँजीवादी देशो द्वारा दुनिया को अपने हितो के, अथवा जिन्हे यह लगा कि पहले विभाजन मे दूसरे बडे पूँजीवादी देशो ने उनकी अपेक्षा ज्यादा फायदा हासिल कर लिया, अत उनके भीतर पुनर्विभाजन की

आवश्यकता ने जोर मारा। परस्पर प्रतिस्पर्द्धाएँ प्रबल हो उठी। गिरोहबन्दियाँ शुरू हो गई।

दूसरी ओर द्वितीय इण्टरनेशनल (मजदूर यूनियनो के प्रतिनिधियो की दूसरी अन्तरराष्ट्रीय सस्था) के अधिवेशन सर्वहारा आन्दोलनो के विविध पहलुओ पर विचार-विमर्श करने मे व्यस्त थे। सन् 1907 मे स्टुटगार्ट मे इस इण्टरनेशनल की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काग्रेस हुई जिसका विवरण लेनिन ने अपने लेख स्टुटगार्ट मे इण्टरनेशनल सोशलिस्ट काग्रेस' मे विस्तृत रूप से अकित किया है। इसमे दिखाया गया है कि 'सैन्यवाद और युद्ध' के प्रश्न पर मध्यमार्गी और खास कर दक्षिणपन्थी-सशोधनवादी प्रतिनिधियो ने पितृभूमि की रक्षा के नाम पर अपनी युद्धपरस्ती सरकारो का समर्थन कर इण्टरनेशनल मे सर्वहारा द्वारा युद्ध से अलग रह कर क्रान्तिकारी भूमिका अदा करने के प्रस्ताव का उल्लघन किया है। यह तब हुआ जब प्रथम विश्वयुद्ध का दौर चालू हो चुका था। इससे इण्टरनेशनल मे बिखराव होकर वह युद्ध की गोद मे विसर्जित हो गया था।

बीसवी सदी के आरम्भ मे शक्तियो की गुटबन्दी रूप ले चुकी थी। एक तरफ जर्मनी, आस्ट्रिया, हगरी तथा इटली का त्रिपक्षीय सहबन्ध था तो दूसरी तरफ ब्रिटेन, फ्रास तथा रूस का निक सौहार्द' या एटेण्ट (सहभागी) था। दोनो शिविरो ने जोर-शोर से युद्ध की तैयारियॉ कर रखी थी। उनके बीच हथियारो को पैना करने की होड चल रही थी और वे नये सहयोग प्राप्त करने की तिकड़मे कर रहे थे।

यह पहला विश्वयुद्ध एक अगस्त 1914 को शुरु हो गया। यह एक साम्राज्यवादी युद्ध था—साम्राज्यवादी देशो का आपसी युद्ध। सबसे पहल जर्मनी ने युद्ध की घोषणा की। इस बीच बोस्निया की राजधानी सरायेवो मे एक सर्ब देशभक्त ने आस्ट्रियाई युवराज फ्राज फर्दीनॉद की हत्या कर दी। जर्मनी और आस्ट्रिया-हगरी ने इसे विश्वयुद्ध छेडने का बहाना बना लिया और सर्बिया के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। जर्मनी ने इस आस्ट्रिया-सर्बिया सघर्ष को शीघ्र ही यूरोप-व्यापी सघर्ष मे बदल दिया। इधर रूस ने तुरन्त लामबन्दी का ऐलान किया तो एक अगस्त को रूस के विरुद्ध भी घोषणा कर दी गई। 3 अगस्त को जर्मनी ने फ्रास के विरुद्ध भी युद्ध घोषित कर दिया। 4 अगस्त को जर्मन सेनाएँ बेल्जियम मे घुस गई। बेल्जियम की तटस्थता का उल्लघन हुआ देख इग्लैण्ड जर्मनी के खिलाफ युद्ध मे शामिल हो गया। जर्मन सेनाओ ने जल्दी ही बेल्जियम की सेनाओ को परास्त कर फ्रास पर आक्रमण कर दिया।

युद्ध के दो साल के बाद रूस की जारशाही की ताकत टूटती गई और वह तेज गति से विनाश के कगार पर पहुँचने लगी। एक ओर आतकवादी भी राजतन्त्र को आघात लगा रहे थे। उन्होने रास्पूतिन की हत्या करके चेतावनी दे दी। उधर सन् 1917 के शुरू मे जन-असन्तोष तीव्रतर होता गया। चारो ओर खाद्यान्न का सकट छा गया। मार्च मे बोलोन्स्की रेजीमेण्ट के कैडरो ने विद्रोह कर अपने कमाण्डर को मार डाला। क्रान्तिकारी युवक मजदूरो के साथ जा मिले। जारशाही का तख्ता उलटा जा चुका था। इसके बाद प्रतिक्रान्ति का एक दौर चला और करेन्स्की को प्रधानमन्त्री बना दिया गया। बोल्शेविको पर दमनचक्र चला। लेनिन को भूमिगत होकर क्रान्तिकारियो का पुनर्गठन करना पडा।

आखिर 25 अक्टूबर (वर्तमान 7 नवम्बर), 1917 की रात को बोल्शेविको के नेतृत्व मे मजदूरो, सैनिको और नौसैनिको ने पेत्रोग्राद मे जारो के भूतपूर्व महल—शीत प्रासाद—पर धावा बोल कर उस पर अधिकार कर लिया और अस्थायी सरकार को जिसने उस महल मे शरण ले रखी थी उसे गिरफ्तार कर लिया गया। यह अक्टूबर क्रान्ति (बोल्शेविक क्रान्ति) की महान् विजय थी।

4 साल तक (1914-1918 ई) तक चलने वाले प्रथम युद्ध की समाप्ति 11 नवम्बर 1918 को तब हुई जब पेरिस के निकट कोपियेन के वन मे मित्र-राष्ट्र सेनाओ के प्रधान सेनाध्यक्ष मार्शल फोश की देख-रेख मे सैलून मे जर्मनी और मित्र-राष्ट्रो के बीच युद्धविराम सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े।

अक्टूबर-क्रान्ति और सोवियत सघ—अक्टूबर क्रान्ति की घटना ने पूँजीवादी विश्व को थर्रा दिया मजदूर वर्ग और कम्युनिस्टो को अभूतपूर्व उल्लास आकाक्षा और प्रेरणा से ओत-प्रोत कर दिया। यह एक अद्भुत और आश्चर्यजनक घटना थी। काश! कार्ल मार्क्स और एंगेल्स इस नजारे को देख पाते और अपने घोषणा-पत्र की इस अवधारणा को साकार हुआ देख कर कह उठते— *यही है वह वस्तुसत्य कि सर्वहारा सत्ता पर काबिज हो सकता है। एक ओर विश्व-सम्पदा का बँटवारा करने की होड मे पहले विश्वयुद्ध मे उलझे* हुए पूँजीवादी देश निरीह जनता का खून बहाने मे लगे हुए थे तो इसी अरसे मे गरीबो की दुनिया इनकलाब जिन्दाबाद से 'दुनिया-भर के मेहनतकशो एक हो!' के नारो से अनुगुजित हो रही थी।

अक्टूबर-क्रान्ति ने उपनिवेशित पराधीन देशो के स्वाधीनता सग्रामों मे नये प्राण फूँक दिए। क्रान्तिकारिता दुगुने उत्साह से कुर्बानी देने की पहल

करने लगी। जनता जाग उठी, सामन्त काँप गये। देखते-देखते दुनिया मे आश्चर्यजनक नजारा दिखाई देने लगा। बुढापा सोच मे पड गया—'क्या राजा मर जायेगा? सेठ लुट जायेगा? भगवान् ऊपर से देखता भर रहेगा?'

अक्टूबर-क्रान्ति ने हर प्रकार के बुनियादी परिवर्तन के दरवाजे खोल दिए। चारो ओर स्वतन्त्र हवा लहराने लगी। जिन्दगी के गीत गूँजने लगे। इनसान जाग उठा।

और ऐसे मे एक इनसान तहस-नहस देश को वापस बनाने, खूबसूरत और खुशहाल करने का सपना सँजो रहा है। एच जी वेल्स कहता है—'किस ख्वाब मे खोए हो लेनिन!' जवाब आता है— देश का विद्युतीकरण करना होगा।'

प्रतिक्रियावादियो ने रूस को गृहयुद्ध मे धकेल दिया। दो साल (सन् 1920 ई) तक देश उलझा रहा आखिर 'लाल रक्षको' ने 'श्वेत गण्डको' को हरा दिया।

जिस किसी मेशेविक समर्थक औरत ने सन् 1916 मे लेनिन के दो गोलियाँ मारी थी एक को तो डॉक्टरो ने निकाल दिया था—एक गोली नही निकल सकी। लेकिन आखिरी साँस तक काम करते रहे लेनिन, सोवियत सघ के चहुँमुखी उठान की सर्वांगीण गरिमामय प्रतिभा—यथार्थाधारित चिन्तक। मनोरम रूप-रेखा देकर सन् 1924 के आरम्भ मे उस सघर्षशील महामेधावी ने अन्तिम साँस ली।

आइए अक्टूबर-क्रान्ति के तत्काल बाद की गई आज्ञप्तियो से साक्षात्कार करे—

1 युद्ध का अन्त हो, सबके साथ शान्ति-सन्धियाँ हो।

2 सभी जमीदारो, मठो गिरजो की भूमि और उससे सलग्न अन्य चल-अचल सम्पत्ति का बिना मुआवजा अधिग्रहण और आवश्यकतानुसार पुनर्वितरण, लगान व कर्जे सब समाप्त।

3 8 घण्टे का कार्यदिवस लागू।

4 फिनलैण्ड की स्वतन्त्रता को मान्यता उक्रेइना की स्वाधीनता को मान्यता और आर्मीनियो के आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकृति। ये थे क्रान्तिकारी विधिसगत कार्य।

5 मई 1918 मे चीनी उद्योग का, जून 1918 मे पूरे तेल उद्योग का तथा अन्य उद्योग शाखाओ के महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठानो का राष्ट्रीयकरण किया गया इससे अर्थव्यवस्था का सार्वजनिक क्षेत्र मजबूत होता गया।

6 जुलाई 1918 मे लेनिन और य म स्वेर्दलोव के निदेशन मे पहले सोवियत सविधान का निर्माण हुआ।

7 योजनाबद्ध सन्तुलित विकास की गति को तेज किया गया।

ये वो आज्ञप्तियाँ है जो विश्वमानव के इतिहास के प्राथमिक दस्तावेज है। इनमे सर्वहारा की वर्ग-चेतना का मर्म है। यह मार्क्सीय चिन्तन का सरचनात्मक स्वरूप है। यह लेनिन के मस्तिष्क की पहचान है। मार्क्स एगेल्स और लेनिन मध्यम वर्ग की चेतना लेकर पैदा हुए थे। बन सकते थे प्रोफेसर वकील। लेकिन ढाल दिया खुद को मजदूर की श्रम की चेतना मे। यह ऐसा कुछ था जो इससे पहले न किसी ने देखा था न सुना था। 'सभी जमीदारो मठो गिरजो की भूमि और उनसे सलग्न अन्य चल-अचल सम्पत्ति का बिना मुआवजा अधिकरण और आवश्यकतानुसार वचितो को पुनर्वितरण लगान व कर्जे सब समाप्त।'

है इसकी कही इससे पहले की और कोई मिसाल! काश भारत के नेहरू-पटेल मे 15 अगस्त, 1947 को ऐसी कोई सकल्प-दृढता हुई होती। नही हो सकती थी क्योकि वहाँ उच्च-मध्यवर्गीय और कुलक चेतनाएँ अपना वर्गहित साध रही थीं। उसे नम्बूदिरीपाद सहन नही हो सकता था—श्यामाप्रसाद मुखर्जी को गोद मे बिठाना गवारा था।

सोवियत यूनियन—लेनिन के निदेशन के अनुसार जोसेफ स्टालिन ने शुरू से लेकर अपनी मृत्यु तक सोवियत यूनियन का अभूतपूर्व विकास किया। स्टालिन सर्वहारा वश-परम्परा की उपज था अत स्वभावत वह सर्वहारा-चेतना का मार्शल था।

सोवियत सघ के मेहनतकशो ने चन्द सालो मे जितना विकास कर दिखाया उतना दुनिया के इतिहास मे आज तक किसी ने नहीं किया। अक्टूबर-क्रान्ति को विरासत मे एक तहस-नहस और निहायत जर्जर देश मिला था। लेकिन लेनिन-स्टालिन की कम्युनिस्ट पार्टी श्रमजीवी और बुद्धिजीवी वर्ग के सयुक्त प्रयासो ने उसे एक ऐसी महाशक्ति मे तबदील कर दिया कि उसके अपने कार्यकाल मे उसका मुकाबला करने की किसी मे

हिम्मत नही थी। एक बार तो उसने मानव-जीवन के हर क्षेत्र मे एक आश्चर्यजनक करिश्मा कर दिखाया। उस समय का विश्व-इतिहास अब भी इसकी गवाही दे रहा है। यहाँ कुछ सकेत दे देना ही पर्याप्त होगा—

1 प्रथम विश्वयुद्ध से हुए नुकसान की भरपाई और प्रतिक्रियावादी ताकतो द्वारा पैदा किए गए दो-साला गृहयुद्ध मे लाल सेना ने उनका सफाया किया।

2 याजनाबद्ध तरीके से औद्योगिक क्षेत्र का विकास करके उसे साम्राज्यवादी देशो के विकास के समकक्ष ला खडा कर दिया।

3 कृषि-कार्यो का पुनर्गठन करके उत्पादो के अनेक नए प्रकार पैदा कर दिए।

4 शत-प्रतिशत साक्षरता के लक्ष्य को सबसे पहले प्राप्त किया, प्राविधिक विकास मे सबको पीछे छोड दिया। उच्च शिक्षा विज्ञान-अनुसन्धान कला और सस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र को शिखर पर ला खडा दिया।

5 साहित्य सगीत, मनोरजन के साधनो मे चमत्कारी तरक्की की।

6 ओलिम्पिक खेलो मे सर्वोत्कृष्टता प्रमाणित की।

7 दूसरे विश्वयुद्ध मे दो करोड लोगा की कुर्बानी भले ही देनी पडी हो, किन्तु हिटलर के नाजीवाद के विश्व-विजय के सपने का धूल मे मिला दिया। जहाँ सारे पूँजीवादी देशो ने हाथ खडे कर दिए थे, वहाँ फासिस्ट दरिन्दगी को दफनाने का श्रेय स्टालिन की रणनीति और लाल फौज के बलिदानी युद्ध-कौशल को ही दिया जा सकता है। अगर स्टालिन की इस एकमात्र कामयाबी को ही आधार मान लिया जाय तो वह लाखो-करोडो कामयाबियो से अधिक वजनदार साबित होगी। यह स्मरणीय है कि हिटलर ने स्टालिन क बेटे को गिरफ्तार कर लिया था और उसकी जान के बदले सोदेबाजी करने का सन्देश भिजवाया था और स्टालिन न यह कह कर ठुकरा दिया था कि 'मैं बेटे की जान के बदले मे सोवियत जनगण की जान का सौदा नही कर सकता। इस जवाब पर हिटलर ने स्टालिन के बेटे को गोली से उडा दिया। उधर स्टालिन ने नाजी फौज को आत्म-समर्पण करने को विवश कर दिया और हिटलर को आत्महत्या करनी पडी।

8 द्वितीय विश्वयुद्ध के दौर मे ही सोवियत सघ पारमाणविक शक्तिसम्पन्न हो गया था। अमरीका ने हिरोशिमा और नागासाकी पर जो एटम बम

गिराए थे, वे हिटलर की पराजय और द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति की घोषणा के बाद गिराये थे।

9 सोवियत यूनियन ने अन्तरिक्ष विज्ञान मे भी पहल की और लूना (चन्द्रबग्घी) को चाँद पर उतारा। यूरी गागारिन पहला अन्तरिक्ष यात्री था।

10 सोवियत सघ मे कोई बेरोजगार नही था तथा नारी–श्रमिक को समान वेतन के अलावा प्रसवकाल मे अतिरिक्त सुविधाएँ दी जाती थी। काम के समय शिशुओ की देखभाल शिशु–गृहो (क्रेशे) मे की जाती थी। घर का काम–काज हो या बाहर का नारी को कुल 8 घण्ट ही काम करना पडता था और इसका भी वेतन तय था।

11 सोवियत सघ एक ऐसा विश्वसनीय मित्र–देश था जिसने कठिन से कठिन परिस्थिति का मुकाबला करने मे अपने मित्र–देश की आर्थिक, सामाजिक और सैनिक मदद की—चाहे वह वियतनाम और क्यूबा हो अथवा भारत। जबकि प्रत्येक साम्राज्यवादी देश ने चाहे दोस्त हो चाहे दुश्मन हरेक का शोषण किया और सकट की घडी मे किनाराकसी की अथवा विश्वासघात किया।

लेकिन स्टालिन–युग परिस्थितिजन्य प्राथमिकताओ के फलस्वरूप पैदा हुई मजबूरियो स्टालिन के नायकत्व के अहकार व्यक्तिवाद तथा कुछ हद तक छुट–भैयो और चाटुकार पार्टी नेताओ द्वारा की गई उसकी वीर प्रशस्ति की अतिशयोक्तियो ने पार्टी सविधान के बुनियादी उसूल जनवादी केन्द्रीयता को ताक पर रख दिया। जनवादी केन्द्रीयता से जनवाद गायब हो गया और केन्द्रीयता ही प्रमुख हो गई। तेरह साल तक सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कोई राष्ट्रीय स्तर का महाधिवेशन नही हुआ। स्टालिन–युंग मे आम कम्युनिस्ट की सर्वहारा वर्ग–चेतना शून्य के कगार पर पहुँच गई अर्थात् पार्टी श्रमजीवी वर्ग–चेतना की पक्षपोपक तर्कप्रणाली को प्रशासनिक पार्टी आभिजात्य वर्ग के शास्त्रीय सिद्धान्तो ने अपने साहित्य प्रवाह मे विलीन कर दिया। बहुसख्यक श्रमिकीय बोलशेविक चेतना मे अल्पसख्यक मेन्शेविक चेतना का पुन उद्‌भव होकर उसे उदरस्थ कर देना जनचेतना की हत्या करने जैसा था। अब वह जनवादी केन्द्रिकता की कम्युनिस्ट पार्टी न रह कर जनवाद रहित—जनगण द्वारा की जाने वाली खरी आलोचना एव आत्मालोचना से रहित केन्द्रिकता प्रधान कम्युनिस्ट पार्टी ही रह गई थी।

पार्टी के जनवादीकरण न किए जा सकने का निहितार्थ यह हुआ कि वस्तुगत रूप से लेनिन की अभूतपूर्व सगठनात्मक देन (जनवादी केन्द्रीयता का

सन्तुलन) का पार्टी से निष्कासन लेनिनीयता का निष्कासन था। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी मे लेनिनीयता फिर कभी (सोवियत सघ के विघटन तक) वापस लौट के नहीं आई। वैसे भी इतिहास की कभी पुनरावृत्ति नहीं होती।

लेनिनीयता का दरकिनार करना लगभग ऐसा ही था जैसा भारत मे विभाजन के निर्णय के समय नेहरू काग्रेस द्वारा गाँधी की विभाजन विरोधी मान्यता व अन्य प्रभावशाली मूल्यो को (असहयोगी सत्याग्रह आदि) को दरकिनार कर दिया जाना। बाद मे गाँधी को ब्राण्ड बना कर मनमाने भ्रष्टाचार मे लिप्त किया जाना था। इधर हिन्दूवादियो ने गाँधी को तीन गोलियाँ मार कर सदा के लिए शान्त कर दिया। आज भी गाँधी न केवल काग्रेस के ब्राण्ड है भारतीय जनता पार्टी भी कहीं-न-कहीं गाँधी ब्राण्ड का उपयोग कर रही है। रूस मे लेनिन ने विचार दिया, स्टालिन ने कर्म। श्रमजीवियो ने निर्माण किया और बलिदान दिए। रूस द्विध्रुवीय विश्व की एक महाशक्ति बना। किन्तु लेनिन और स्टालिन के निधन के बाद पार्टी चलती रही केन्द्रीयता के पथ पर, स्टालिन की छीछालेदार कर, लेनिन को ब्राण्ड बना कर कम्युनिस्ट नौकरशाह अपना सिक्का सेकते रहे। उन्होने लेनिन को मार्क्स के साथ बिठा कर मार्क्सवाद-लेनिनवाद' के ब्राण्ड को इतना जोरदार ढग से प्रचारित कर दिया कि भारत मे तो कम्युनिस्ट पार्टियो का नाम भी मार्क्सवादी-लेनिनवादी रख दिया गया। आज भी भारत मे मार्क्सवादी-लेनिनवादी' सर्वाधिक मान्य सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है जबकि कार्ल मार्क्स-एगेल्स (विशेषकर मार्क्स की 'पूँजी') के समकक्ष (एक ही पक्ति म) न लेनिन को रखा जा सकता है, न स्टालिन को न माओत्से तुग को अथवा न किसी और को। हम विभिन्न युगपुरुषो के देश, काल और परिस्थितियो के कामो के बीच के अन्तराल की कैसे उपेक्षा कर सकते हैं।

इतना ही नहीं कि रूसी प्रचारतन्त्र ने वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी को भ्रमात्मक मूल्याकन मे फँसा मारा अपितु पार्टी काग्रेसो की रिपोर्टों मे नौकरशाही के आँकड़ो के आधार पर मूल्याकन किया गया कि हमने वैज्ञानिक समाजवाद के उच्चतम लक्ष्यो' को प्राप्त कर लिया है और सन् 1959 मे सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की इक्कीसवी काग्रेस ने देश मे कम्युनिज्म क सर्वतोमुखी निर्माण के दौर के आरम्भ की घोषणा तक कर दी।' (स विश्व-इतिहास भाग-2 (पृ 332))। इस समय लेनिन जिन्दा होते तो इसकी भर्त्सना करते और मार्क्स-एगेल्स होते तो इसे 'पाखण्डपूर्ण प्रचार कहते।

दरअसल सोवियतसघ ने छ –सात दशको मे विकास किया था वह राष्ट्रीयकृत औद्योगिक क्रान्ति थी। वह समाजवाद की स्थापना नहीं थी। मार्क्स ने तो वैज्ञानिक कम्युनिज्म के अलावा पूँजीवाद के विश्वव्यापी स्तर पर कायम रहते और किसी 'समाजवाद की अवधारणा ही प्रस्तुत नही की थी। यद्यपि लेनिन मार्क्स की इस बात से सहमत थे कि एक अकेले देश मे कम्युनिज्म नही लाया जा सकता फिर भी उन्होने यह माना कि एक देश मे समाजवाद विकसित करने का प्रयोग क्यो नही किया जाना चाहिए। बीसवी सदी के अन्तिम दौर ने सोवियत सघ और सो स कम्युनिस्ट पार्टी के विघटन के साथ लेनिनग्राड का नाम बदलने आदि कई उलटी–पुलटी शब्दावलियो (पैरस्तोइका और ग्लासनोस्त) के प्रयोग ने तथाकथित समाजवाद' और कम्युनिज्म' को ध्वस्त कर विश्व को अमरीकी थानेदारी के आधीन कर दिया।

एक हकीकत और उजागर हो गई। सोवियत सघ ने जिन देशो को जोर–जबरदस्ती से समाजवादी खेमे मे जोडा था वे भी छिटक गए। इसके अलावा सोवियत सघ ने दूसरे देशो के कम्युनिस्ट नेताओ के बेटे–बेटियो को (जिनमे भारत के कम्युनिस्टो के बेटे–बेटियॉ बडी तादाद मे थे) सैद्धान्तिक और तकनीकी प्रशिक्षण दिए उनमे से पूँजीवादी कम्पनियो मे जाकर करोडपति तो अवश्य बन गए——कम्युनिस्ट नही बने। यही हाल अनुवादको किताबघरो पार्टी भवनो आदि का हुआ। गाँधी–चिन्तन को काग्रेस ने दफनाया लेनिन के चिन्तन को रूसी कम्युनिस्टो ने।

किन्तु मार्क्स को न तो ब्राण्ड बनाया जा सकता है न उसके दार्शनिक–ऐतिहासिक भौतिकवाद को खारिज किया जा सकता है। कार्लमार्क्स की पूँजी पूँजीवाद के किसी रूप मे जीवित रहने तक न केवल अपनी प्रासगिकता को बनाए रख सकेगी बल्कि उसके लिए चुनौती भी बनी रहेगी। साथ ही जब तक मनन–चिन्तन की जीवन्त परम्परा का साहित्य बना रहेगा—— द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद भी उसकी सशक्त कडी बनी रहेगा। यही स्थिति गाँधी के असहयोगात्मक सत्याग्रह' की भी है।

औपनिवेशिक व्यवस्था का पतन——साम्राज्यवाद विरोधी सघर्ष का क्या स्वरूप रहा और राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्ति किस रूप मे हुई यह सर्वप्रथम इस बात पर निर्भर था कि इस सघर्ष का नेतृत्व कौन–सा वर्ग कर रहा था। जिन देशो मे जैसे चीन उत्तरी कोरिया वियतनाम मे युद्ध के पहले ही या उसके दौरान अनुकूल परिस्थितियाँ बन गई थीं वहाँ मजदूर वर्ग ने राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की बागडोर सँभाली। अत इन देशो मे साम्राज्यवाद विरोधी सघर्ष ने

लोक जनवादी क्रान्तियो का रूप ग्रहण किया जिनके फलस्वरूप इन देशो को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त हुई तथा समाजवादी मार्ग पर इनके विकास के लिए पूर्वाधार बने।

इण्डानेशिया मे चौथे दशक में प्रस्तुत अपने कुछ विचारो को विकसित करते हुए सुकर्णो ने स्वतन्त्रता के लिए गठित आयोग के सामने पाँच-सूत्री सिद्धान्त रखे—राष्ट्रवाद अन्तरराष्ट्रवाद जनवाद जनकल्याण तथा धार्मिक सहिष्णुता। आयोग की बैठक मे अपने भाषण का अन्त सुकर्णो ने स्वतन्त्र होगे या मर-मिटेगे।' के नारे के साथ किया। फिर जापान की पूर्ण पराजय के समय 17 अगस्त, 1945 को सुकर्णो ने जनता की ओर से अपने देश की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

पाँच साल के उतार-चढाव क्रिया-प्रतिक्रिया के उपरान्त अगस्त, 1950 तक इण्डोनेशिया सघ गणराज्य के रूप मे पुनर्स्थापित हो सका।

वर्मा मे भी देशभक्तो ने जापानी कब्जावरो के विरुद्ध सशस्त्र सघर्ष चलाने के साथ-साथ स्वतन्त्रता प्राप्ति के वैध साधनो का भरपूर उपयोग किया। इन्हीं देशभक्तो ने एक विशाल अर्द्धसैनिक लोक स्वयसेवक सगठन गठित किया। इसमे मुख्यत देहातो के श्रमिक व दस्तकार ही थे। इसका नेतृत्व आउग साँ को सौंपा गया। सन् 1946 म जारदार हड़ताल हुई। जून, 1947 मे सविधान सभा की पहली बैठक हुई। इसमे आउग साँ ने तैयारशुदा मसौदे के आधार पर स्वतन्त्रता का प्रस्ताव रखा जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया।

4 जनवरी, 1948 को रगून मे एक समारोह मे स्वतन्त्रता की घोषणा की गई और सत्ता नयी सरकार को सौंपी गई। ब्रिटिश झण्डे के स्थान पर बर्मा सघ का झण्डा फहराया गया।

भारत मे द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान सन् 1942 म गाँधीजी ने ब्रिटेन पर जोर डालने के लिए 'अग्रेजो, भारत छोडो।' के आह्वान के साथ 'असहयोग आन्दोलन चलाया। इस पर बडे पैमाने पर गिरफ्तारियाँ होने लगी और काग्रेस के कार्यकर्ताओ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। क्रान्तिकारियो, कम्युनिस्टो समाजवादियो आदि ने मजदूरो और किसानो तथा सशस्त्र क्रान्तिकारी कार्रवाइयो ने एक कारगर भूमिका तैयार कर रखी थी। सुभाषचन्द्र बोस ने हिन्दचीन मे रहने वाले भारतीया तथा भारतीय युद्धबन्दियो को लेकर जापान अधिकृत बर्मा मे 'आजाद हिन्द फौज' बना डाली।

सन् 1945 के उत्तरार्द्ध मे भारत मे निरन्तर हड़तालो का ताँता लग गया। इनका रूप अकसर राजनीतिक होता था और हड़तालियो और पुलिस मे टकराहटे हुआ करती थी। जनवरी 1946 मे वायुसेना के पायलटो और फरवरी मे बम्बई मे नौसैनिको ने विद्रोह किए। हड़ताल एक जहाज पर आरम्भ हुई और शीघ्र ही बम्बई बन्दरगाह मे स्थित सभी बीस जहाजो पर फैल गई। नौसैनिको ने जोर-शोर से जुलूस निकाले जिनके नारे थे— इनकलाब जिन्दाबाद', हिन्दू-मुस्लिम एकता जिन्दाबाद।' और ब्रिटिश साम्राज्य मुर्दाबाद।'

इसी साल 16 अगस्त को मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान सघर्ष दिवस' की घोषणा कर दी। जून 1947 के आरम्भ मे ब्रिटिश सरकार ने भारत को दो राज्यो मे बाँटने का फैसला किया। यह तय किया गया कि पजाब और बगाल की विधानसभाएँ इन प्रान्तो के विभाजन के प्रश्नो को हल करेगी। दोनो नये राज्यो—भारत और पाकिस्तान को डोमिनियन का दर्जा दिया गया। रियासतों को खुद यह फैसला करना था कि वे किसी एक डोमिनियन मे शामिल होगी या ब्रिटेन के साथ पहले जैसे सम्बन्ध बनाये रखेगी। गाँधीजी विभाजन के पूरी तरह खिलाफ थे लेकिन सबने उनको दरकिनार कर दिया।

बगाल और पजाब के विभाजन के दिनो मे अभूतपूर्व खून-खराबा और लूट-पाट हुई। ऐसा अनुमान है कि रक्तपात मे 5 लाख से ज्यादा लोग मारे गए और लगभग डेढ करोड़ लोग घायल हुए। 15 अगस्त 1947 को विभाजित भारत स्वतन्त्र हुआ। प्रतिक्रियावादी हिन्दू तत्त्वो ने 30 जनवरी 1948 को गाँधीजी को गोली मार कर उनकी हत्या कर दी। 26 जनवरी 1950 को भारत प्रभुतासम्पन्न जनवादी गणराज्य बन गया।

फरवरी 1948 मे ब्रिटिश उपनिवेशवादियो को लका द्वीप (वर्तमान मे श्रीलका) को भी डोमीनियन मानना पड़ा।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद मलाया मे फैले राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन ने सन् 1948 मे सशस्त्र सघर्ष का रूप ले लिया। सन् 1957 मे मलाया की स्वतन्त्रता को मानने को विवश होना पड़ा। 1951 मे नेपाल साविधानिक राजतन्त्र हो गया और एक प्रभुतासम्पन्न राज्य ने नाते दूसरे देशो के साथ राजनयिक सम्बन्ध स्थापित करने लगा।

हिन्दचीन प्रायद्वीप पर उपनिवेशवादियो के विरुद्ध सघर्ष विशेषत तीव्रतर हो गया था। सन् 1954 मे जेनेवा समझौते के अनुसार फ्रासीसी साम्राज्यवादियो को न केवल वियतनाम छोड़ना पड़ा बल्कि लाओस और

कम्बोडिया की स्वतन्त्रता को भी मान्यता मिल गई। बाद म बीसवीं सदी के आठवे दशक मे वियतनाम ने अमरीकी साम्राज्यवाद को मात देकर विभाजित वियतनाम को एकीकृत कर दिया। इस विजय मे वियतनाम को कठोरतम सघर्ष मे से गुजरना पड़ा। वहाँ अमरीकियो ने छल बल और दमन का घृणिततम तरीका अपनाया, किन्तु उन्हे जब मुँह की खाकर वापस लौटना पडा तो विश्व मे उसका सम्मान और अभिमान चूर-चूर हो गये और वियतनाम अजेय कम्युनिस्ट देश के रूप मे गौरवान्वित हुआ।

सन् 1949 मे दुनिया के सबसे बड़ी आबादी वाले चीन ने माओ-त्से-तुग के नेतृत्व मे राजधानी पीकिंग पर लाल झण्डा फहराया। कोरिया मे भी उपनिवेशवादियों को हार का सामना करना पडा।

उत्तरी अफ्रीका मे भी साम्राज्यवाद विरोधी सघर्षो ने जोर पकड़ा जिसके परिणामस्वरूप मिस्र, लीबिया, सूडान, ट्यूनीशिया और मोरक्को आदि ने भी स्वतन्त्रता हासिल करने मे सफलता प्राप्त की। फरवरी 1958 मे मिस्र और सीरिया का विलय हुआ और सयुक्त अरब गणराज्य की स्थापना हुई। बाद मे यमन भी स्वाधीन सदस्य के रूप मे शामिल हो गया। बाद मे यह सयुक्तता भी टूट-बिखर गई। मिस्र ने सयुक्त अरब गणराज्य नाम बनाए रखा।

1 जुलाई 1962 के जनमतसग्रह ने अल्जीरिया को स्वतन्त्र घोषित करने का प्रस्ताव मान लिया और वह प्रभुसत्तासम्पन्न राज्य बन गया। इससे अल्जीरिया को सामन्तवाद और साम्राज्यवाद विरोधी क्रान्तिकारी कदम उठाने का अवसर मिल गया।

जिस ब्रिटिश उपनिवेश गोल्ड कोस्ट ने सन् 1957 म स्वतन्त्रता प्राप्त की थी, उसने पश्चिमी अफ्रीका मे एक शक्तिशाली राज्य का दर्जा हासिल कर लिया और देश को—घाना नाम के रूप मे विख्यात किया। इस नये राज्य मे टोगोलैण्ड का क्षेत्र भी शामिल कर दिया गया।

इसी प्रकार लम्बे सघर्ष के बाद जनमतसग्रह का अन्तिम परिणाम यह निकला कि गिनी को स्वतन्त्र गणराज्य कर दिया गया। इसके कुछ समय के बाद सभी फ्रासीसी विशेषज्ञो को गिनी से बाहर बुला लिया गया और फ्रासीसी पूँजीपतिया ने अपनी पूँजी भी जल्दी ही वहाँ से हटा ली।

सन् 1960 को अफ्रीकी वर्ष घोषित किया गया। इस वर्ष महाद्वीप मे 17 नये राज्यो की उत्पत्ति हुई। पहली जनवरी को कैमरून आजाद हुआ। अगस्त से नवम्बर, 1960 तक उष्ण कटिबन्धीय अफ्रीका के सभी उपनिवेश

स्वतन्त्र घोषित कर दिए गए। डाहोमी गणराज्य नाइजर गणराज्य ऊपरी वोल्टा गणराज्य आइवरी कोस्ट गणराज्य चाड गणराज्य केन्द्रीय अफ्रीकी गणराज्य (ई 1917 तक उबागी-शारी), कागो गणराज्य (राजधानी ब्राजाविले भूतपूर्व मध्य कागो), गबोन गणराज्य सेनेगल गणराज्य माली गणराज्य (भूतपूर्व फ्रासीसी सूडान) और इस्लामी गणराज्य मारिटानिया थे। जनसख्या की दृष्टि से अफ्रीका सबसे बडा स्वतन्त्र देश था।

किन्तु सन् 1960 मे ही साम्राज्यवाद ने कागो (वर्तमान जायर) जैसे देश के स्वतन्त्र होने के प्रारम्भिक महीनो मे इसकी अर्थव्यवस्था को तहस-नहस कर डाला। उपनिवेशवादियो और उनके एजेण्टो ने देश के प्रधानमन्त्री पैट्रिस लुमुम्बा की हत्या कर दी, उसके साथियो को क्रूरतम यातनाएँ देकर कत्ल कर दिया। कागो की त्रासदी और दूसरे अफ्रीकी देशो की नाटकीय घटनाएँ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण थीं कि स्वतन्त्रता की घोषणा के साथ आरम्भ होने वाली राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्ति का दूसरा दौर प्राय औपनिवेशिक स्थिति से छुटकारा पाने के सघर्ष के दौर से भी अधिक जटिल अधिक कठिन और कभी-कभी तो अधिक रक्तरजित होता है।

सन् 1961-1964 के बीच स्वतन्त्रता पाने वाले पूर्वी और मध्य अफ्रीकी देशो मे अधिकाश ब्रिटिश उपनिवेश थे। केनिया, उगाण्डा जजीबार न्यासालैण्ड और उत्तरी रोडेशिया ऐसे ही देश थे। दो सरक्षणाधीन क्षेत्रो मे से एक तागानीका ब्रिटेन द्वारा शासित था और दूसरा रुआण्डा-उरुण्डी बेल्जियम द्वारा। ये देश विश्व-पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। उत्तरी रोडेशिया की ताम्रपट्टी ससार के ताँबे के खनन का सबसे बडा क्षेत्र था। उगाण्डा केनिया तागानीका के खेतो-बागानो से विशाल मात्रा मे कॉफी कपास और सीमल मिलती थी। इसलिए ब्रिटिश सत्ता इस पर कब्जा बनाए रखना चाहती थी। लेकिन उन्हे छोडना ही पडा। सन् 1966 के शुरू तक अगोला दक्षिणी रोडेशिया और मोजम्बीक स्वाधीन हो गए। इसी तरह कसूटोलैण्ड लेसोटो तथा बेचुआनालैण्ड-बोट्सवाना भी स्वाधीन राष्ट्र बने।

सन् 1994 मे दक्षिणी अफ्रीका स्वतन्त्र हो गया। लैटिन अमरीकी क्षेत्र मे अमरीका के 92 फौजी अड्डे थे। अर्जेण्टीना ब्राजील मैक्सिको चिली बोलीविया सल्वाडोर और ग्वायेमाला मे क्रान्तिकारी घटनाओ की झडी लग गई। इसी दौर मे अलन्दे की हत्या कर दी गई। ग्वाटेमाला मे सामन्तवाद तथा साम्राज्यवाद विरोधी जनक्रान्ति ने अन्य देशो को भी काफी हद तक प्रभावित किया। ग्वाटेमाला के अनुभव ने जनक्रान्ति की आवश्यकता को फिर से सतह

पर लाकर खडा कर दिया, जिसमे निर्णायक भूमिका सर्वहारा वर्ग को अदा करनी थी।

सन् 1959 की जनवरी मे प्रसिद्ध छापामार क्रान्तिकारी नेता चे ग्वेरा के अनन्य साथी फीडल कास्त्रो के नेतृत्व मे क्यूबा मे साम्राज्यवाद विरोधी जनवादी क्रान्ति कामयाब हुई। अमरीका ने फीडल कास्त्रो की हत्या करवाने के अनेक षड्यन्त्र रचे किन्तु वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी के कैडर और क्यूबा के आम नागरिक की सजगता ने प्रत्येक षड्यन्त्र को विफल कर दिया। कास्त्रो ने यह प्रमाणित कर दिया कि अमरीका जैसे शक्तिशाली साम्राज्यवाद को उसकी नाक के नीचे स्थित क्यूबा जैसा छोटा-सा देश भी उसी प्रकार शिकस्त दे सकता है जैसे वियतनाम और उत्तरी कोरिया ने दी है। जनवादी चेतना को अन्तत नहीं दबाया जा सकता।

(3) **पूँजीवाद की वैश्विकता**—आजकल जिसे ग्लोबलाइजशन ऑफ इकॉनोमी अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण , भूमण्डलीकरण', उदारीकरण-नव उदारीकरण' आदि नामो स पुकारा जाता है, उसमे नयापन नाम की कोई अवधारणा नही है। पूँजीपति वर्ग या पूँजीवाद की स्वय की वैश्विक लाक्षणिकता का अथवा पूँजीवाद की वैश्विक सरचना या चारित्रिकता का सर्वप्रथम उल्लेख कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगेल्स द्वारा सन् 1847-1848 मे लिखित कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा-पत्र' या 'कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र मे किया जा चुका है।

कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र' के प्रथम अध्याय (पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा) मे मार्क्स-एगेल्स ने उत्पादक शक्तिया और उद्योग के विकास और साथ ही विश्व-मण्डी क फैलाव का खुलासा किया है। यह विकास पूँजीपति वर्ग अपनी समर्थक अथवा हथियाई हुई सत्ता के जोर पर करता है वह सामन्ती, पितृ-सत्तात्मक भावात्मक ग्राम्य सम्बन्धो को हर क्षेत्र मे क्रूरतापूर्वक तोड कर करता है। इसकी जगह ले लेते हैं नग्न निजी स्वार्थ पर आधारित नकद—'ला पैसा, ला पैसा चुका पैसा' के सम्बन्ध। न बहना न भय्या सबसे बड़ा रुपय्या' के सम्बन्ध। पूँजीपति वर्ग के लिए स्वाधीनता' का अर्थ होता है—शोषण की खुली छूट अथवा मुक्त व्यापार।

मार्क्स-एगेल्स ने पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली के राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धो पर पड़ने वाले प्रभाव के द्वन्द्वात्मक स्वरूप को विशेष रूप से उद्घाटित किया है। एक तरफ राष्ट्रविशेष के विधि-विधान और क्षेत्रीय उत्पादन-सम्बन्धो का लिए सीमित बाजारू मण्डी है, तो दूसरी ओर एक

विश्व-मण्डी का व्यापक उत्पादन-सम्बन्ध है। विश्व-व्यापार के फैलाव और उत्पादन और उपभोग के अन्तरराष्ट्रीकरण ने उद्योग के तले से राष्ट्रीय आधार को ही हटा दिया है। उत्पादन की युगो पुरानी राष्ट्रीय शाखाओ का स्थान नये उद्योगो' ने ले लिया है। घोषणा-पत्र' मे कहा गया है कि जिनका समारम्भ सभी सभ्य राष्ट्रो के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन जाता है जो देशी कच्चे माल का नही बल्कि दूरतम क्षेत्रो से लाये कच्चे माल का उपयोग करते हैं, जिनके उत्पादो का उपयोग स्वदेश मे नही बल्कि पृथ्वी के हर कोने मे किया जा सकता है।'

इससे वैश्विक पूँजीपति वर्ग अविकसित कृषिप्रधान देशो को अपना आश्रित देश बना लेता है।

एक और महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर 'घोषणा-पत्र ने आगाह किया है कि बुर्जुवा क्रान्तियो ने इग्लैण्ड और फ्रास मे घटित होने वाली घटनाओ के फलस्वरूप नये वर्ग के राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व को बजाय समाप्त करने के उसे और सुदृढ बनाया, फिर भी वाछित नतीजा प्राप्त नही किया जा सका अत घोषणा-पत्र मे इस बात को रेखाकित किया गया कि आधुनिक राज्य की कार्यपालिका (राजसत्ता) समस्त बुर्जुवाजी के सामान्य मामलो का सचालन करने वाली समिति के अलावा और कुछ नही है। इसकी मिसाल आज भी, गणराज्यो या लोकतान्त्रिक ससदीय कार्यपालिकाओ मे देखी जा सकती है। सर्वहारा वर्ग को इसकी जगह अपना तन्त्र भी विकसित करना होगा।

घोषणा-पत्र ने ही सर्वप्रथम इस बात पर जोर दिया कि *'प्रत्येक वर्ग-*सघर्ष एक राजनीतिक सघर्ष होता है। ऐसे राजनीतिक सघर्ष को यदि कोई क्रान्तिकारी सघर्ष मे बदल सकता है तो वह केवल सर्वहारा वर्ग ही हा सकता है, क्योकि जो भी वर्ग आज बुर्जुआजी के मुकाबले पर खडे हुए है उनमे अकेला सर्वहारा ही वस्तुत , क्रान्तिकारी वर्ग है। आधुनिक उद्योग के आगे अन्य वर्ग क्षय हो जाते हैं और अन्तत विलुप्त हो जाते हैं सर्वहारा उसका विशष और अनिवार्य उत्पाद है।'

इसी घोषणा-पत्र मे इस प्रश्न का भी स्पष्टीकरण दिया गया है कि सर्वहारा वर्ग मे ऐसी कौन-सी वस्तुगत विशेषताएँ होती हैं कि केवल वही क्रान्तिकारी वर्ग होने का हकदार हो सकता है। इसमे उसके *श्रम के शोषण की* प्रक्रिया पूँजीवाद का अपना अन्तर्विरोध, सर्वहारा का वैश्विक चरित्र उसका दरिद्रीकरण, उसकी सघर्षशील अनिवार्यताएँ आदि सभी लाक्षणिकताएँ

सम्मिलित हैं। घोषणा-पत्र के प्रकाशन के बाद की निम्नाकित घटनाओ ने सर्वहारा की क्रान्तिकारिता को अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया—

'पूँजी' के प्रथम खण्ड का प्रकाशन (उन्नीसवी सदी के सातवे दशक मे)

- सन् 1871 का परिस कम्यून

सन् 1886-89 शिकागो—8 घण्टे के कार्यदिवस के लिए सघर्ष चार सर्वहारा नेताओ को फाँसी

- दुनिया के लगभग हर देश मे पार्टिया का गठन और मजदूर आन्दोलना का विस्तृत और परिपक्व होना

कम्युनिस्ट' लीग के बाद विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन (1847-1876 ई), विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन (1876-1914 ई) और विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन (1919-1943 ई)

- सन् 1917 की अक्टूबर-क्रान्ति

प्रथम विश्वयुद्ध मे जर्मनी की हार, द्वितीय विश्वयुद्ध मे हिटलर के नाजीवाद को सोवियत सघ द्वारा मिट्टी मे मिलाना

उपनिवेशवाद के खिलाफ प्रत्येक पराधीन देश के स्वतन्त्रता सग्राम मे मजदूरो और उनके सगठनो की महत्त्वपूर्ण भूमिका

वियतनाम मे अमरीका आदि की शर्मनाक पराजय, उत्तरी कोरिया मे आक्रमणकारियो की पराजय और क्यूबा मे अमरीकी साजिशे नाकाम

चीन मे माओ त्से तुग के नेतृत्व मे कम्युनिस्टो और श्रमजीवियो की विजय

बीसवी सदी के आखिर मे बावजूद सोवियत सघ के विघटन के मजदूर आन्दोलनो का एक नये रूप मे सघर्षरत रहना। श्रमिक वर्ग के साथ बैंक कर्मचारिया, बीमा कर्मचारियो, तकनीकी कर्मचारियो, अध्यापको तथा अन्यान्य विभागो के कर्मचारियो और महिला कर्मचारियो की एक बहुत बडी सख्या कभी अपने-अपने अलग सगठनो मे और कभी सयुक्त होकर लाखो-लाखो के प्रदर्शनो धरनो ज्ञापनों अनशनो छोटी-लम्बी हड्तालो के रूप मे सघर्ष करते चले जा रहे हैं। अपनी माँगो को राजनीति के साथ जोड कर नये नारो का अनुसन्धान करते जा रहे हैं। श्रमिक अब पढा-लिखा, सजग, अधिक कुशल और रणनीतिज्ञ हो गया है। उसके आज के प्रमुख नारे हैं—

निजीकरण को आग लगा दो।' नव उपनिवेशवाद हो बर्बाद, हो बर्बाद।' 'नव उदारवाद धोखा है', नव उदारवाद हो बर्बाद।' और इनके साथ ही साथ वे पुराने नारे भी जुडे हुए हैं— इनकलाब जिन्दाबाद!', साम्राज्यवाद मुर्दाबाद! और 'दुनिया-भर के मेहनतकशो एक हो!'

उल्लेखनीय है कि बडे-बडे आठ-नौ पूँजीवादी देश जहाँ-कही मीटिंग करने इकट्ठे हुए है वहॉ उन्हे वहॉ के लाखो आम लोगो के जुझारू प्रदर्शनो का सामना करना पडा है और वे मुँह की खा कर वापस लौटने को विवश हो रहे है। दूसरी ओर पूँजीवाद के भीतर बढते अन्तर्विरोध मन्दी, बेरोजगारी, भुखमरी अतिउत्पादकता तेल सकट, अनाज सकट एक-ध्रुवीयता के टूटने की सम्भावनाएँ ग्लोबल वार्मिंग, पारमाणविक कचरा पानी के अभाव और पर्यावरण प्रदूषण आदि की समस्याएँ नये सघर्षों को आमन्त्रित कर रही हैं। एक ओर चन्द साम्राज्यवादी देशो का गिरोह है तो उनके मुकाबले मे खडे हैं अधिसख्यक अल्प-विकसित और विकासोन्मुख अभावग्रस्त देशो का समुदाय।

कार्ल मार्क्स समाज के विकास पर भौतिकवाद के विचार को लागू करने वाले पहले व्यक्ति थे—*यह यथार्थ उनके जीवन की अमर रचना पूँजी' से ही* भली प्रकार चरितार्थ होता है। ब्ला इ लेनिन ने सन् 1915 की अपनी रचना हेगेल के द्वन्द्ववाद की योजना मे इसे इस रूप मे व्यक्त किया है— यदि मार्क्स ने अपने पीछे तर्कशास्त्र' लिख कर नही छोडा तो उन्होने पूँजी का तर्क अवश्य ही छोडा 'पूँजी मे मार्क्स ने एक ही विज्ञान पर तर्कशास्त्र द्वन्द्ववाद और भौतिकवाद के सज्ञान का सिद्धान्त (तीन शब्दो की आवश्यकता नही है यह एक ही बात है) लागू किया जिसने हेगेल से सभी मूल्यवान चीजो को आत्मसात् किया है और उन्हे (धरती पर उतार कर) विकसित किया है।

पूँजी मे मार्क्स ने उन सामाजिक सम्बन्धो को दर्शाया जो मानव-चेतना से स्वतन्त्र रूप मे विकसित होते है अन्तिम विश्लेषण मे प्रमुख विचारधारात्मक राजनीतिक और न्यायिक प्रणालियो को निर्धारित करते हैं। सामान्यतया विचारो का मार्ग सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओ पर निर्भर करता है न कि इसके विपरीत। इसका अर्थ यह है कि स्वय सामाजिक सम्बन्ध भौतिक होते है वस्तुगत होते हैं। यही वह निष्कर्ष है जिसे निकालने मे मार्क्स से पहले के सारे चिन्तक असफल रहे थे।

पूँजी की रचना ने साबित कर दिया कि इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा प्रायोजित कल्पना पर खड़ी की गई सरचना नहीं इसके विपरीत वह

एक वैज्ञानिक सिद्धान्त बन चुकी है तथा समाजविज्ञान एक वस्तुगत विज्ञान का दर्जा हासिल कर चुका है।

कार्ल मार्क्स के अनुसार---- पूँजी का एकाधिकार उत्पादन की उस प्रणाली के लिए एक बन्धन बन जाता है जो इस एकाधिकार के साथ-साथ और उसके अन्तर्गत जन्मी है और फली-फूली है। उत्पादन साधनो का केन्द्रीयकरण और श्रम का समाजीकरण अन्त मे एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते हैं जहाँ वे अपने पूँजीवाद के भीतर नही रह सकते। खोल फट जाता है। पूँजीवादी निजी स्वामित्व की मौत की घण्टी बज उठती है। सम्पत्ति-अपहरण करनेवालो की सम्पत्ति का अपहरण हो जाता है। ('पूँजी' खण्ड-1)

पूँजीवादी पूँजी की विशेषता यह है कि वह स्वय विज्ञान और तकनीकी ज्ञान, सभी उत्पादक शक्तियो के विकास को निरन्तर तीव्रतर करते हुए नये समाज, नयी सामाजिक-आर्थिक सरचना की भौतिक पूर्वापेक्षाएँ तैयार करती है। बड़ी फैक्टरियो मे सर्वहारा का एक साथ शामिल करके और आबादी के अधिकाश भाग को शोषित मजदूरो मे परिवर्तित करके पूँजी पुराने समाज की जजीरो को तोडने और इसका पुनर्सगठन शुरू करने मे समर्थ एक क्रान्तिकारी शक्ति तैयार कर देती है।

पूँजी' की रचना मे कार्ल मार्क्स ने माल' को प्राथमिकता प्रदान की है---समग्र पूँजीवादी समाज का केन्द्रबिन्दु। माल से ही 'पूँजी' का प्रस्थानबिन्दु प्रारम्भ होता है। मार्क्स इन वाक्यो से पूँजी लिखना शुरू करते हैं---- जिन समाज-व्यवस्थाआ मे उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली प्रमुख रुप से पायी जाती है उनमे धन मालो के विशाल सचय' के रूप मे सामने आता है और इसकी एक इकाई होती है माल। इसलिए हमारी खोज अवश्य ही माल के विश्लेषण से आरम्भ होनी चाहिए।'

माल को केन्द्रक बना कर मार्क्स ने बेमिसाल कमाल कर दिखाया। माल प्रत्येक वह वस्तु है जिसे मानव इन्द्रियो द्वारा अनुभव कर सकता है, वह हरेक के उपयोग के लिए, उपभोग के लिए है। वह ठोस वस्तु है---कल्पना नही, वह प्रत्येक के लिए लेन-देन का विनिमय का हेतु है। वह रोज काम मे आन वाली वस्तु है। उसमे श्रम, मूल्य, मुद्रा बाजार घर परिवार, परस्पर सम्बन्ध, खरीद-फरोख्त, राज-काज, कृषि व्यापार अन्तरिक्ष यान विज्ञान तकनीक कला सस्कृति साहित्य आदि सभी समाविष्ट हो जाते हैं। माल अर्थव्यवस्था की नीव है उसकी समूची सरचना भी। वह भौतिक है। अन्तर्विरोधात्मक है, द्वन्द्वात्मक है ऐतिहासिकता का आधारभूत तत्त्व है। वह अमूर्त श्रम का मूर्त

उत्पाद है। मालो का सम्यन्ध उत्पादक शक्तियो से है वही उत्पादन-सम्बन्ध निर्धारित करता है। मार्क्स ने माल को पूँजी के केन्द्र मे रख कर पूँजीवाद को आगाह कर दिया कि उसकी जड़ की पहचान की जा चुकी है और 'पूँजी ने पूँजी के उच्चतम विकास के परिणामस्वरूप उसी के द्वारा उसी मे से विस्फोटित होकर रूपान्तरित होने की दिशा दिखा दी है।

पूँजी' ने ही दार्शनिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सही दिशा मे विकास किया है। पूँजी' ने ही ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मकता का प्रतिपादन किया है। पूँजी' ने राजनीतिक अर्थशास्त्र का साक्षात्कार करवाया है। पूँजी' ने वर्ग-चेतना का विकास दर्शाते हुए वर्गसघर्ष को इतिहास के स्रोत के रूप मे विवेचित किया। पूँजी ने पूँजीपतिवर्ग के विकास के साथ श्रमिकवर्ग के विकास को भी उसी अनुपात मे उसी के मुकाबले मे रेखाकित किया है। श्रम के शोषण के स्रोत का सात तालो वाले तलघरो मे बन्द दो-नम्बरी बही-खातो के षड्यन्त्र का सारी भ्रष्ट करतूतो का और तिकड़मो का पूँजी के निर्माण के सामान्य फार्मूले (M C M या मु-मा-मु) से लेकर अधिशेष मूल्य की मार्फत एक औसत श्रमशक्ति के शोषण की मात्रा तक एक अकाट्य तार्किकता के द्वारा भण्डाफोड कर दिया। इसी ने दुनिया-भर के कम्युनिस्टो को एक आधारभूत चिन्तन प्रदान किया। दुनिया की विचारधारा और वैचारिक सघर्ष को गहराई से प्रभावित किया।

जब तक पूँजीवाद कायम रहेगा—मार्क्स की पूँजी न केवल प्रासगिक ही रहेगी अपितु उसकी अन्त्येष्टि तक उसका पीछा करती रहेगी। चाहे मोबाइलीकृत सूचनातन्त्र हो कम्प्यूटरीकृत तकनीकी तन्त्र हो चाहे तेल डिप्लोमेसी हो चाहे कृषि का औद्योगीकरण या कृषि भूमि का 'सेजीकरण' हो, चाहे क्रिकेटरो का मण्डीकरण हो चाहे क्रिकेटरो का अर्द्धनग्न या लगभग नग्न नृत्यो द्वारा मनोरजन हो चाहे ससदीय तन्त्र का पूँजीकरण हो चाहे योगाभ्यासो का निगमीकरण हो चाहे पौराणिक मूल्यो का आधुनिकीकरण हो चाहे मीडिया का विज्ञापनीकरण हो चाहे टी वी चैनलो की सामन्ती-पूँजीवादी अपसास्कृतिक प्रचार-प्रसार-भूमिका हो तथा पारमाणविक-अन्तरिक्षीय पर्यावरणीय प्रदूषण की घातकताएँ हो अथवा अन्यान्य प्रकार की भौतिक या वैचारिक खुराफाते हो—यह सुनिश्चित है कि पूँजीवाद का असीमित विकास तथा उसका असीमित अन्तर्विरोध उसके विध्वस के कारक सिद्ध होगे और मार्क्स की पूँजी दृढतापूर्वक उसकी साक्षी होगी।

पूँजी के अन्तर्य से निष्कर्षित दार्शनिक और ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक

भौतिकवाद पूँजीवादोत्तर व्यवस्था के दिशा-निदेशक सिद्धान्त होंगे----जड सूत्रा मे नही किन्तु स्वय मे अन्तर्निहित द्वन्द्वात्मक विकास-क्षमताओ की वजह से, भौतिक और वैचारिक वस्तुगत परिस्थितियो के विकास की वजह से। पूँजी' की अन्तर्वस्तु स्वय ही द्वन्द्वात्मक प्रणाली मे ढली है अत उसके जड़सूत्रता मे परिणित होने की कोई सम्भावना नही है। फिर भी इन पक्तियो का लेखक पूँजी' और उसके रचनाकार को औरो की तरह चालू शब्दावली मे कालजयी' या 'अमर' के विशेषणा म नही देख सकता, क्योकि मार्क्स पूँजी' इन पक्तियो के लिखने वाले सहित सारे जनगण सारी जीव सृष्टि भौगोलिक है पार्थिव है, कालसापेक्ष है, जबकि समस्त अन्तरिक्षीय विकास सतत, काल और गति अनवरत प्रक्रिया है।

सब-कुछ होते हुए भी----पृथ्वी और उसकी जीव-सृष्टि कालसापेक्ष होते हुए भी उसके बाद भी द्वन्द्वात्मकता और भौतिकता अपनी अनवरतता मे ही अपनी उपस्थिति कायम रखेगी। तब मार्क्स और एगेल्स एक साथ अपनी प्रासगिकता को सतह तक प्रमाणित करते चले जायेगे। यह न कोई काल्पनिक अथवा भावात्मक वक्तव्य है बल्कि विलोमत यह वह प्राकृतिक यथार्थ है जिससे कभी किनाराकशी नहीं की जा सकती। कार्ल मार्क्स और फ्रेड एगेल्स मिल कर ऐसा युग्म बन जाता है जो आज तक के मानव-इतिहास मे बेजोड़ है।

वैश्विक प्रणाली मे सक्रमण----द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद देर-सबेर लगभग सारे उपनिवेशित पराधीन देश स्वतन्त्र हा गए। जिन उपनिवेशो की अर्थव्यवस्था को लूट-पाट करके नष्ट किया गया था उस सचित पूँजी स उन्होने औद्योगिक अर्थतन्त्र का विकास किया इजारेदारियाँ कायम की। फिर बीसवी सदी के अन्तिम दशक और इक्कीसवी सदी के पहले दशक तक औद्योगिक अर्थव्यवस्था ने प्रौद्योगिक अर्थात् वैश्विक अर्थव्यवस्था म सक्रमित किया जिसे आज पूँजीवाद का भूमण्डलीकरण नव-उपनिवेशवाद वैश्विक पूँजीवाद या साम्राज्यवादी पूँजीतन्त्र कहते हैं। सोवियत सघ के विघटन के बाद अब अमरीका एकध्रुवीय थानेदारी की भूमिका मे आ चुका है।

सास्थानिक चक्रव्यूह----अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकाप (International Monetary Fund IMF) विश्व बैंक (World Bank WB) और अन्तरराष्ट्रीय व्यापार सगठन (World Trade Organization, WTO) आज की अर्थव्यवस्था का त्रिकोणीय नियन्त्रकतन्त्र है।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष की स्थापना की गई थी। इसका उद्देश्य है अपने से सम्बन्धित सदस्य देश को भुगतान सन्तुलन के

लिए चार किश्तो मे उसके सदस्य कोटे की राशि का 25 प्रतिशत कर्ज के रूप मे देना। इसके अलावा यदि ज्यादा जरूरत हो तो एक साल मे एक्स्टेण्डेड फण्ड फैसिलिटी (E F F) के अन्तर्गत कोटे का 95 प्रतिशत तक भी दिया जा सकता है।

सन् 1948 मे गैट (Gatt general Agreement on Tarif and Trade) *की स्थापना की गई। इसमे शुल्को और वाणिज्य सम्बन्धी सामान्य समझौते किए* जाते है। सन् 1985 तक इस प्रकार के समझौतो का सिलसिला चलता रहा।

सन् 1950 के बाद अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष ने निम्नलिखित शर्ते थोप दी जो सभी पर लागू है

1 कर्ज मे ली गई राशि को केवल विदेशी मुद्रा की तात्कालिक जरूरतो को पूरा करने के लिए ही खर्च किया जाये,

2 कर्ज की राशि को किसी विकास योजना के लिए खर्च नही किया जा सकेगा,

3 आयात पर रोकथाम नही रहेगी

4 भुगतान के बारे मे द्विपक्षीय समझौते न किए जाये और

5 बहुमुद्रा व्यवहार को बन्द किया जाय।

इन शर्तो का उद्देश्य है अमरीका को वीटो का अधिकार देना सार्वजनिक क्षेत्र और विकास योजना को समाप्त करना और कीमतो को काबू मे रखने के लिए दी जाने वाली क्षतिपूर्ति (सब्सिडी) को खत्म करना आदि।

विश्व बैंक की खास शर्ते है—(1) सार्वजनिक क्षेत्र को निजी क्षेत्र मे बदलना (2) मुआवजो मे कमी करना (3) मजदूरो और कर्मचारियो मे छँटनी करना और (4) मुद्रास्फीति के अधिक बढने की सम्भावना को स्वीकार करना।

सन् 1993 मे अमरीकापरस्त नयी विश्व-व्यवस्था का उदय हुआ। तदनुसार इसके प्रमुख बिन्दु हैं—(1) कृषि सामग्री सम्बन्धी व्यापार और कृषि व्यापार सम्बन्धी नीति को प्रभावित करना (2) बैकिंग इश्योरेस आदि सेवाओ मे व्यापार (3) बौद्धिक सम्पदा के अधिकारो से सम्बन्धित व्यापार (4) पूँजी-निवेश के साधन सम्बन्धी व्यापार और (5) बहुपक्षीय व्यापार सगठन जिसके साथ सबसे खतरनाक पहलू हैं विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र मे पेटेण्ट तथा पेटेण्ट प्रक्रिया को लागू करना।

यह वैश्वीकरण की प्रक्रिया सावियत सघ के विघटन और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन (NAM) के प्रभावहीन हो जाने के कारण और अधिक जोर पकड़ने लगी।

लगभग 85 प्रतिशत पेटेण्ट बहुराष्ट्रीय निगमो के पास हैं।

आर्थिक नवउदारवाद----इसके निम्नाकित चार प्रकार है----

(1) पूँजी- बाजारो मे उदारीकरण

(2) वित्तीय बाजारो मे उदारीकरण

(3) पूँजी के प्रवाह मे उदारीकरण

(4) व्यापार सम्बन्धी सरकारी विनियमन मे उदारीकरण

नवउदारीकरण की उपर्युक्त चहुँमुखी प्रक्रिया का सम्बन्ध अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय सस्थाओ----अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष (I M F), विश्व बैंक (W B) और विश्व व्यापार सगठन (W T O) की शर्तों को लागू करने की प्रक्रिया से जुडा है।

पूँजी-बाजारो मे उदारीकरण का प्रमुख लक्ष्य विदेशी पूँजी निवेशको के लिए (घरेलू व्यवसाया और औद्योगिक फर्मों से मिल कर) वित्तीय पूँजी को अधिक-से-अधिक उपलब्ध कराना है।

वित्तीय बाजारो मे उदारीकरण का उद्देश्य वित्तीय प्रणाली की कार्यकुशालता को बढ़ाना है, ताकि बैंक और वित्तीय सस्थान अर्थव्यवस्था के विकास मे अधिक उपयागी भूमिका निभा सके। इसमे उधार दने के लिए बने-बनाए कानून-कायदो का शिथिलीकरण करना है जिसमे ब्याजदर का परिवर्तन भी शामिल है।

पूँजी-प्रवाह को देश की ओर मोड़ने के मकसद से पूँजी-निवेश के स्रोतो को बढाया जाता है जिससे पूँजी-निवेश अधिक व्यापक क्षेत्र प्राप्त कर सके।

अन्तत जब हम नवउदारवाद की चर्चा करते हैं तो पिछले 16-18 साल्गे से बढती चली आ रही वैश्विक औद्योगिक विस्तार की अन्तरराष्ट्रीय व्यापार मे बढोतरी पर अपना ध्यान केन्द्रित करते है। यह उदारीकरण सरकारी कानून-कायदो की रुकावटो को पूँजीपतियो को अधिकाधिक उधार देने के लिए पूरी तरह से हटाने के लिए पुनर्निर्धारण करना अथवा उनका शिथिलीकरण करना है।

किन्तु यदि सरकार जनकल्याण को ताक मे रख कर उदारीकरण लागू करती है तो वह अधिक घातक साबित होगा। क्योकि असन्तुलित आर्थिक

विकास बहुत बडी चुनौतियाँ पैदा करेगा। असन्तुलित आर्थिक उच्छृखलता तमाम आर्थिक क्षेत्रो मे अनियन्त्रित उखाड़-पछाड पैदा कर देगी—चाहे वह शेयर बाजार हो अथवा जिन्स या वस्तु बाजार, दोनो पर एक जैसा ही प्रभाव पडेगा।

उदारीकरण' के नाम पर विदेशी मुनाफाखोरी को नियन्त्रित करने वाले वाजिब प्रतिबन्धो एव कानून-कायदो को दफना देना आत्महत्या करने जैसा ही होगा। अर्थव्यवस्था का उदारीकरण किसानो के लिए नहीं मेहनतकशो के हित मे नही बेरोजगारो को रोजगार देने के लिए नही गरीबो के लिए रोटी, कपडा, मकान मुहैया कराने के लिए नही, बल्कि अमरीका, यूरोप एशिया आदि की बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की लूट-खसोट हेतु अपनी अर्थव्यवस्था को चौपट करने के लिए है ताकि विकासमान और अल्पविकसित देश आत्मनिर्भर होकर अपने जनगण और जनतन्त्र को लुटने से न बचा सके। यह आर्थिक नवउपनिवेशवाद के विकास को बेलगाम छूट देने की बेशर्म प्रक्रिया है। उदारीकरण वृद्धि-दर विकास-दर अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता आदि का जाल फैला कर गरीबो, दलितो पीडितो तथा बेरोजगारो के बुनियादी अधिकारो की पक्षधरता के तहत उठाए जाने वाले मूल प्रश्नो को हवा मे उछाल दिया जाता है। कौन किसके प्रति उदार—साधनहीन के लिए कि साधन-सम्पन्न के प्रति? उत्पादन की वृद्धि दर किसके फायदे मे—निर्धन देशो के कि धनी देशो के? निजीकृत औद्योगिक विकास-दर से मुनाफा किसको होगा—अविकसित इकाइयो को या पूँजी निवेशक बहुराष्ट्रीय कम्पनियो को? अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का भारी-भरकम उपयोग किसके पक्ष मे होगा—उत्पादनकर्ता श्रमजीवियो के कि उत्पादनक-श्रम का शोषण करने वालो द्वारा रगीन विज्ञापनो और उनके दलाल लेखको की रचनाओ के लिए? आखिर बौद्धिक सम्पदा कहाँ जाने को विवश होगी?

वित्तीय पूँजी और उसका शेयर-पूँजी मे सक्रमण—(1) वित्तीय पूँजी का प्रारम्भिक रूप—बैंक और कम्पनी सचालन की एक मिली-जुली कार्यप्रणाली से वित्तीय पूँजी की शुरुआत होती है। बैंक मे आम लोगो के द्वारा अपने रोजमर्रा से बची हुई रकम को सुरक्षित रखने और बैंक द्वारा उस रकम पर निर्धारित ब्याज राशि प्राप्त करने के लिए जमा कराई जाती है। यहाँ बैंक चाहे राष्ट्रीयकृत प्रकार का हो अथवा निजी समूह द्वारा सीमित प्रकार का हो—दोनो का रूप 'सामाजिक' ही होता है। लेकिन राशि जमा कराने वालो मे मध्यवर्ग और धनिकवर्ग दोनो के शामिल हो जाने से सन्तुलन बिगड़ जाता है जिससे बैंक की कार्यप्रणाली भी असन्तुलित हो जाती है। वैसे अधिसख्यक मध्यवर्ग द्वारा

जमा की गई समग्र राशि का योग किसी एक धनिक या फर्म की राशि से कई गुना अधिक होता है, किन्तु बैंक द्वारा उधार देने या ऋण देने की प्रक्रिया में किसी एक धनिक या फर्म को प्राथमिकता मे रखा जाता है। उसकी पूँजी की हैसियत देख कर उसे जो ऋण दिया जाता है वह उसकी वास्तविक हैसियत से कई गुना अधिक होता है। स्वाभाविक ही है कि वह वास्तविक हैसियत से अधिक की राशि निम्नवर्ग की सामूहिक जमा राशि मे से काट कर दी जाती है जिसे बैंक कभी सार्वजनिक नहीं करता।

उदाहरण के लिए कोई टटपुँजिया (पैटीबुर्जुवा) उत्पादन की एक बडी इकाई खोलना चाहता है और उसके लिए उतनी पूँजी चाहिए जो उसके पास है नहीं तो वह बैंक से पैसा उधार लेकर एक कम्पनी की स्थापना कर लेता है। इस कम्पनी के जरिये वह उतना मुनाफा कमाने का भरोसा दिलाता है कि जिससे वह बैंक को उसके द्वारा प्राप्त ऋण को वापस चुका देगा। वास्तव मे उसके पास लगाने का पाँच लाख हैं, लेकिन वह कई प्रभावो का इस्तेमाल करके (इसमे नौकरशाही का प्रभाव भी शामिल है) पचास लाख रुपये बैंक से उधार ले लेता है। बैंक के पास जो पूँजी है वह बहुत-से लोगो की बचत की होती है, जिस पर बैंक उन लोगो को ब्याज देता है और जिसे वह उद्योगपतियो (पूँजीपतियो) के उपयोग के लिए उधार देता है। इस तरह कही से लेकर कही और को दी जाने वाली पूँजी से बैंक की पूँजी बढ़ती है। यही वित्तीय पूँजी है। पश्चिमी देशो के औद्योगीकरण मे और साथ ही पूँजीवाद के फैलाव मे बैंको की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। शुरु-शुरु मे छोटे उद्यागो के लिए बैंका से उधार लेकर काम चलाया जाता रहा।

लेकिन बाद मे जब बडे-बड़े उद्योग खड़े करने की नौबत आई तो बड़ी पूँजी की जरूरत महसूस की जाने लगी। इसके लिए बड़ी कम्पनियो की आवश्यकता थी, सो इनकी स्थापना के लिए शेयर बेच कर पूँजी जुटाई जाने लगी। मसलन, किसी पूँजीपति के पास केवल दो करोड़ रुपए निवेश करने के लिए है और उसे अपने प्रोजेक्ट के लिए सौ करोड की जरूरत है तो वह कम्पनी बना कर बहुत-से लोगो को उसमे भागीदार बनाएगा, जो शेयर होल्डर कहे जायेगे। वह बाकी के अट्ठानबे करोड़ उनसे शेयर खरीद के रूप मे इकट्ठा करेगा। वह उनकी बचत राशि से आएँगे।

अगर उसकी कम्पनी को लाभ होता है, तो उसको दो करोड के अनुपात मे लाभ मिलेगा और घाटा होता है तो उसे दो करोड़ के अनुपात मे ही उठाना पड़ेगा। मान लो, घाटा दो हजार करोड़ का हुआ तो उस पर दो करोड़ पर होने

वाले घाटे का प्रभाव पड़ेगा, किन्तु बाकी का नफा–नुकसान भी बाकी के शेयरो के अनुपात मे बँटेगा। ऊपर से देखने पर यह समतामूलक व्यवस्था लगती है लेकिन इसमे यह बात छिपा ली जाती है कि कम्पनी का नियन्त्रण किसके हाथ मे है, खर्च कौन कर रहा है, हिसाब कौन रख रहा है और इन कामो के बदले मे मालिक खुद कम्पनी से कितना और किन तरीको से वसूल करता है। कम्पनी को घाटा होने पर मालिक को सिर्फ दो करोड की पूँजी के अनुपात मे दो प्रतिशत घाटा वहन करना होता है बाकियो को अट्ठानबे प्रतिशत के अनुपात मे।

शेयर कम्पनियो के शेयर बाजार लगते हैं जहाँ शेयर के भाव उतरते-चढ़ते रहते हैं। झूठी शेयर कम्पनियाँ बना कर छोटे शेयरधारको से पैसा बटोर कर चम्पत हो जाते हैं या कम्पनियाँ विलुप्त हो जाती हैं, जैसे एनरोन। अमरीका की शेयर कम्पनी चाहे छोटे हो या बड़ी। बड़े–बड़े निगमो तक शेयर बेच कर पूँजी इकट्ठी करने की सुविधा प्राप्त है और उसमे जोखिम सीमित है, जबकि मुनाफा कमाने की सम्भावना असीमित। कम्पनी डूबने पर मालिक तो बच जाते है जबकि छोटे निवेशकर्ता डूब जाते हैं।

शेयर बेच कर जो पूँजी इकट्ठी की जाती है वह वास्तव मे सामाजिक बचत है जिस पर एक छोटे–से समूह को नियन्त्रण मिल जाता है। जब पूँजी सामाजिक है तो नियन्त्रण भी सामाजिक होना चाहिए किन्तु वह निजी होता है। कम्पनी का मालिक बड़ा पूँजीपति होता है, वह अपने रिश्तेदारो या परमभक्तो को ऊँचे पदो पर नियुक्त कर देता है। वे खुद बड़े वेतन और भत्ते लेते हैं। झूठे वाउचर बना कर हिसाब मे हेरा–फेरी करते हैं। पूँजीवाद मे लाभ का निजीकरण होता है तो हानि या घाटे या जोखिम उठाने का समूहीकरण भी।

शेयर बाजार मे घोटालेबाज घुसते हैं तो वे अविश्वसनीयता की ओर ले जाते है। घोटालेबाज तो फर्जी कम्पनी बना कर खूब पैसा इकट्ठा कर लेते है। 'शेयर मार्केट बूम' मे घोटाले बहुत ज्यादा होते हैं। उस 'बूम' के दौर मे शेयरधारक खूब पैसा लगाते हैं किन्तु जब हजारो करोड़ रुपये बटोर कर मुफ्तखोर गायब हो जाते है या कम्पनी फेल हो जाती है तो बाकी के शेयरधारको की रकम डूब जाती है। इससे दु खी होकर लोग आत्महत्या करने तक को विवश हो जाते हैं अन्यथा वे कर्ज से इतने दब जाते हैं कि उनकी पीढियाँ तक उसे सहन करने को मजबूर हो जाती हैं। शेयर मार्केट मे फँसना तो बहुत आसान है किन्तु उससे पिण्ड छुडाना बहुत मुश्किल है। हर जगह छोटे शेयर होल्डरो को तबाह होते देखा जाता है फिर भी शेयर बाजार का उतार–चढाव पूँजीवादी सरकारी तन्त्र के घोटालेबाजो का अखाडा बन चुका है।

वायदा व्यापार—वायदा व्यापार मे किसी के लेने का वायदा तो किया जाता है किन्तु उसे लिया नहीं जाता। 'मार्जिनमनी' ('स्याही या साही' जो भी कहे) अनुबन्ध के रूप मे दी जाती है। मान ले कि किसी ने तीन माह बाद की सप्लाई के लिए सौ टन गेहूँ लेने का वायदा किया। सौ टन गेहूँ के बाजार मूल्य का पाँच प्रतिशत 'मार्जिनमनी के रूप मे जमा करा कर अनुबन्ध खरीद लिया। फिर उस अनुबन्ध को ऊँचे दाम पर बेच दिया। इससे उसे बिना गेहूँ खरीदे ज्यादा दाम मिल गए। फिर भाव चढ़ने की सम्भावना देख उस दूसरे ने उसी अनुबन्ध को अपनी खरीद से ज्यादा भाव मे बेच दिया। इस प्रकार अनुबन्ध दर-दर बेचा-खरीदा जाता रहा। लेनी-बेची, बेची-लेनी के फोन खड़कते रहे और अनुबन्ध की लेनी-बेची की प्रक्रिया मे पूँजी इधर से उधर और उधर से इधर भटकती गई। यह अनुबन्ध पूँजी ही वह आवारा पूँजी है जो उत्पादन को किनारे पर रख कर अपना कठपुतली नाच दिखाती रहती है। इसे कहते हैं—'पैसे से पैसा कमाना।'

यह आवारा पूँजी केवल शेयर बाजार मे ही नही पैदा हा रही बल्कि मुद्रा बाजार से भी पैदा हो रही है। एक देश की मुद्रा से दूसरे देश की मुद्रा खरीदन में धड़ल्ले से कालाबाजारी चलती है। यहाँ तक कि सेसेक्स के चढ़ने-उतरने पर भी अरबो-खरबो की बोलियाँ लगती है और बड़ी-बडी रकमे कम्प्यूटर का बटन दबाते ही इधर से उधर आती-जाती रहती हैं।

यहाँ एक मूल प्रश्न पैदा होता है—पूँजी तो व्यापार और निवेश के जरिए कहीं-से-कहीं जा सकती है, अर्थात् पूँजी का तो वैश्वीकरण किया जा रहा है, किन्तु क्या उन्हीं तरीको से—अर्थात् शेयर बाजार और वायदा बाजार के तौर-तरीकों से श्रम का भी वैश्वीकरण किया जा सकता है? इसके साथ ही यह सवाल भी पैदा होता है कि चाहे शेयर बाजार हो या वायदा बाजार—इनका मूल आधार माल' नहीं है? तो और क्या है?

पूँजी कैसे ही पैदा की जाय उसका कुछ भी रूप-रग हो—उसे श्रमिक (कुशल हो या अकुशल) से, श्रम से उत्पादन से 'माल' से विच्छिन्न करके नही देखा जा सकता।

पूँजीवाद का वर्गचरित्र

उन्नीसवीं सदी के पाँचवे दशक मे कार्ल मार्क्स ने कहा—आज तक का विद्यमान समस्त समाज का इतिहास वर्ग-सघर्षो का इतिहास है' (कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र' का आरम्भ वाक्य)। इसमे पहली बार मालिक-

गुलाम समाज-व्यवस्था से लेकर वैश्विक पूँजीवाद के वर्ग-विभाजित समाज तक के लिखित इतिहास के केन्द्रीय वर्गचरित्र को सूत्रबद्ध किया गया था।

इस सूत्र से इतिहास और समाज के अध्ययन मे एक नये दृष्टिकोण का प्रतिपादन हुआ। दासप्रथा और सामन्ती काल के सेनापति राजा-रानी, सम्राट-सम्राज्ञी युद्धवीर अथवा नायक-नायिका अब प्रमुख भूमिका से हटा दिए जाकर किनारे पर डाल दिए गए। इतिहास क्षत्रपो के पारस्परिक युद्धो का लेखा-जोखा मात्र नही रहा। वह वीरो और नायको का प्रशस्ति-पत्र नहीं रहा। पूँजीवाद ने सामन्ती काल तक के महाकाव्य साहित्य को आखिरी सलाम पेश कर दिया। वीरगाथा काव्य को अलविदा कर दिया गया। इतिहास सामाजिक द्वन्द्व के मर्म को समझने लगा। वह समाजविज्ञान के साथ सघनता से जुड़ता चला गया।

कार्ल मार्क्स का उपर्युक्त सूत्र' विकासक्रम का एक निगमित निष्कर्ष है जिसे उन्होने कम्युनिस्ट लीग के अपने सहयोगी जोजेफ वेडमेयर को 5 मार्च 1852 को लिखे गए अपने पत्र मे रेखाकित किया है—' आधुनिक समाज मे वर्गो के अस्तित्व की खोज करने के श्रेय का मैं अधिकारी नही हूँ। न ही उनके सघर्ष की खोज करने का श्रेय मुझे मिलना चाहिए। मुझसे बहुत पहले ही बुर्जुआ इतिहासकार वर्गो के इस सघर्ष के ऐतिहासिक विकास का और बुर्जुआ अर्थशास्त्री वर्गो की आर्थिक बनावट का वर्णन कर चुके थे।' (स्रोत—मार्क्स, एगेल्स, सकलित पत्रावली सन् 1844-1895 प्रगति प्रकाशन मास्को (1982 पृ 68)।

नि सन्देह स्वय मार्क्स की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन यह है कि उन्होने उस पूर्ववर्ती खोज का सावचेत अध्ययन किया और यह सिद्ध करके उसे वैज्ञानिक आधार पर विकसित किया कि वर्गो का अस्तित्व उत्पादन के विकास के खास ऐतिहासिक अनुक्रमो के साथ जुड़ा हुआ है। मार्क्स समकालीन पूँजीवाद के समाज मे वर्गसघर्ष के विकास के स्वरूप का अन्वेषण करके इस नतीजे पर पहुँचे कि यह सघर्ष लाजिमी तौर पर सर्वहारा के अधिनायकत्त्व की दिशा की ओर उन्मुख है तथा यह अधिनायकत्व स्वय सभी वर्गो के उन्मूलन और वर्गहीन समाज की ओर सक्रमण मात्र है।

पूँजीवाद का कोई भी स्तर हो—उपनिवेशवाद मे लूट-पाट से सचित पूँजी का प्रारम्भिक पूँजीवाद, दूसरे स्तर का औद्योगिक विकास का पूँजीवाद अथवा आधुनिक युग के आखिरी दौर के तीसरे स्तर का वैश्वीकृत पूँजीवाद या *साम्राज्यवादी पूँजीवाद—सभी मे ही वर्ग-विभाजकता को न केवल यथावत्*

कायम रखा गया, अपितु उसे और अधिक व्यापक कर दिया गया है। पूँजीवाद का मौलिक चरित्र आज भी वर्गशोषण का है जो पाँच सौ वर्ष पहले था। वह किसी भी स्तर को प्राप्त कर ले, वह अपने-आप को न तो बदलने की स्थिति मे आ सकता है और न कभी अपने चरित्र को बदल सकता है।

उसके असली चेहरे पर बहुत खूबसूरत, मृदुल मधुर मुस्कानभरा मुखौटा है, किन्तु उसके पीछे का छिपा हुआ असली रूप एक बड़े-बडे, आगे निकले खूनभरे दाँतो वाला, हिरोशिमा-नागासाकी पर एटम बम गिराने वाला, उत्तरी कोरिया, वियतनाम इराक अफगानिस्तान पर आक्रमण करने वाला तथा सब प्रकार के अमानुषिक अत्याचारा की सीमाएँ तोड़ने वाले का, क्रूरतम कातिल का आतककारी मुद्रा वाला शैतानी रूप है।

पूँजीवाद का वर्ग-चरित्र न बदला है, न ही बदलेगा---इसकी बजाय सिलसिलेवार अधिक से और अधिक खतरनाक होता चला जायेगा। साथ ही यह भी पूरी सम्भावना है कि उसका यह भयकर वर्गीय लक्षण ही वर्ग-सघर्ष के माध्यम से इसके विध्वस की प्रक्रिया को निर्णायक स्थिति तक पहुँचाने का क्रम जारी रखेगा। यही इसकी नियति दिखाई देती है।

पूँजीपति वर्ग---दुनिया का कोई भी देश हो---विकसित, विकासमान, विकासोन्मुख अथवा अविकसित, उसके पूँजीपति का हित एक-समान है और वह है हर तरह से शोषण करना। वह हरेक जाति मे होते हुए भी जाति-निरपेक्ष होता है जैसे कि जन्मभूमि का होते हुए भी जन्मभूमि-निरपेक्ष। वह धर्मनिरपेक्ष व सम्प्रदाय-निरपेक्ष होता है। वह पूरी तरह लाभ सापेक्ष ही होता है। मुनाफे की तुलना मे न वह किसी सवेदना या भावना को तरजीह देता है, न किसी शास्त्रीय-अशास्त्रीय तर्क-सगति को। मुनाफे के लिए हर रिश्ते को कुर्बान कर सकता है। उसके लिए मुनाफा प्राथमिक है---प्रेम, मुहब्बत, शान्ति, भ्रातृत्व, मातृत्व पितृत्व, परिवार अथवा कला, सस्कृति साहित्य मानवता आदि सब गौण या उपेक्षणीय। मुनाफे की उधेड़-बुन मे ही वह जीता-मरता है। उसी के लिए हर प्रकार की जोखिम उठा लेता है, हर प्रकार के षड्यन्त्र, हर प्रकार के अपराध मे लिप्त रहता दिखाई देता है। मुनाफे के लिए ही आपसी प्रतिस्पर्द्धा के मैदान मे उतरता है। मुनाफे के लिए हत्या तक करता-करवाता है। घाटे या ऋणभार के बढ़ने पर आत्महत्या भी वही करता है।

किसी सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री ने एक उदाहरण देते हुए बताया है कि मक्खन लोगो की जरुरत की चीज है, वह स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी है। लेकिन पूँजीपति को यह चुनाव करना हो कि मक्खन का उत्पादन

करने मे ज्यादा मुनाफा होता है या बन्दूक का उत्पादन करने मे तो वह बन्दूक ही बनायेगा जिसको बना कर बेचने मे मुनाफा ज्यादा है। बन्दूक से हिसा और हत्या होगी—इससे उसे कोई मतलब नहीं।

पूँजीपति घुम्मकड होता है, वह दूर-दराज तक आवागमन करता है और पूँजीवाद के विश्वव्यापी नेटवर्क से जुड जाता है। भारतीय पूँजीपति अमरीकी कम्पनी खरीद लेता है तो अमरीकी या ब्रिटिश पूँजीपति भारत की कम्पनी को। 'मधुप कब एक कली का है' (गीत पक्ति)। उसको तो कली-कली से मधु चूसना है। *आज तो अरबो-खरबो का वारा-न्यारा मोबाइल की हलकी-सी* डिबिया से घर बैठे ही हो जाता है। अब न दूरी न देरी—पलक मारते ही इधर का उधर और उधर का इधर। और फिर सरकार उनकी ससद उनकी मीडिया उनकी। उनको सारी सुविधाएँ सुलभ। चाहे मीडिया से कमाएँ चाहे क्रिकेट से, चाहे अपसस्कृति से। दुनिया उनके लिए उनकी हथेली पर रखा अगूर है उनके दोनो हाथो मे लड्डू हैं।

पूँजीपति वर्ग ने विज्ञान के विकास को अनुसन्धानो-आविष्कारो को तकनीकी विकास को सत्ता के बल पर अधीनस्थ कर अपने ही मुनाफे के लिए उपयोग *किया है। सारी औद्योगिक सस्थाओ का अपने लिए उपयोग किया है* और दिया क्या—दुनिया का विभाजन और पुन -पुन बँटवारा दो विश्वयुद्ध जिनमे करोडो इनसानो की निर्मम हत्याएँ हिरोशिमा और नागासाकी पर एटमी आक्रमणो से अगणित जीवधारियो का क्षणभर मे महाविनाश अन्यान्य देशो पर अद्यतन थोपे गए अनेक विनाशकारी युद्ध मेहनतकशो के श्रम का सपरिवार उनके खून का सदियो तक अनवरत शोषण, कृषि और कृषको की बर्बादी भूमिगत षड्यन्त्र भष्ट्राचार अपराध-वृत्तियाँ अराजकताएँ बलात्कार दमन-उत्पीड़न और ग्लोबल वार्मिंग की पर्यावरण प्रदूषण जन्य सौगात। खून, आँसू और पसीने का धाराप्रवाह!

इसी वर्ग ने सभ्यताओ को नेस्तनाबूद किया सास्कृतिक विरासतो का ह्रास कर नग्न नृत्यो का वातावरण दिया अस्मिताओ को पैरो-तले कुचला और सवेदनाओ को तोड़-मरोड कर फेक दिया। चित्रपट दूरदर्शनी चैनल और ध्वनि-प्रसारको से न्याय और वस्तुसत्य पर इतनी कालिमा फेर दी कि जिसकी सफाई कर उसका स्पष्ट चित्र देख पाना दुश्वार हो गया। सौ बार ही नहीं बल्कि हजार बार झूठ का ढोल पीटो ताकि जनसाधारण उसी को सत्य के रूप मे स्वीकार कर ले। यह उनका दार्शनिक सिद्धान्त बन गया।

कुछ भी हो पूँजीपति वर्ग पूँजी के बिना, पूँजी-बाजार के बिना बाजार-

वस्तुओ और उनके उत्पादन के बिना उत्पादन उत्पादन-सम्बन्धो और उत्पादन-सम्बन्ध स्थिति की विषमता के बिना तथा विषमता बिना वर्गसघर्ष के गतिशील नही रह सकते।

मध्यम वर्ग—यह शोषक और शोषित यहाँ इस सन्दर्भ मे पूँजीपति वर्ग और श्रमजीवीवर्ग के बीच का मानव-समुदाय है। इसमे सरकारी और गैर-सरकारी कर्मचारी कृषक (खेतीहर मजदूरा से रहित), दस्तकार कलाकार साहित्यकार वैज्ञानिक, शिक्षक, शोधकर्ता, पुरातत्त्ववेत्ता, धार्मिक नेता इतिहासकार दार्शनिक राजनीतिक दलो के नेता, इजीनियर, प्रबन्धक, ठेकेदार छोटे दूकानदार दलाल अभिनेता खिलाड़ी जादूगर, भविष्यवक्ता आदि सभी शामिल है।

सामान्यतया मध्यम वर्ग ऊपर स नीचे एव नीचे से ऊपर की ओर चक्कर लगान वाले झूले की तरह उतार-चढाव या चढाव-उतार की-सी मानसिक प्रवृत्ति वाला होता है। उसमे भरपूर महत्त्वाकाक्षाएँ होती हैं जो उछाल देकर उसे अभिजात वर्ग मे भी पहुँचा सकती है और यदि उनसे उत्पन्न भावनालोक टूट जाय अथवा काल्पनिक स्वर्ग धरती पर आ गिरे तो या तो उसका हार्टफेल हो जायेगा या वह आत्महत्या कर लेगा। उसके मिथ्या स्वाभिमान अथवा अहकार को हकीकते टुकड़े-टुकड़े भी कर सकती है।

यदि मध्यम वर्ग अपनी वर्ग-चेतना को श्रमिकोन्मुखी कर दे तो वह पूँजीवादी पक्षधरता के विरुद्ध वामोन्मुखी सघर्षो का हिस्सेदार बन जायेगा। यह उसकी वर्गातरणता या वर्गच्युति के कारण सम्भव होगा। ऐसे मे धन-लालसा का त्याग कर साधारण जीवन जीने लगेगा।

साधारणत मध्यम वर्ग भावप्रधान कल्पनामय आनन्दवादी, अवसरवादी या चमचागीर, बेपदे का लोटा लयात्मक या गीतात्मक, आत्मतुष्ट या आत्म-श्लाघाग्रस्त, मस्त, नशीला, इश्की परवाना, पिछलग्गू, शर्मीला भद्र कोमल, कायर लफ्फाज, पिण्डीपकड या झक्की-पाखण्डी तथा अविश्वसनीय होता है।

लेकिन बावजूद अपनी अस्थिर मानसिकता मिथ्याभिमान और भाव प्रधानता के कुछ गलत काम करता है तो कई बार स्मरणीय गतिविधियो का हिस्सेदार बन जाता है। वह बडा रचनाकार कलाकार, चित्रकार आदि बन कर अपनी यादगारे भी छोड़ जाता है।

आमतौर पर मध्यमवर्ग वर्ग-विषमता का विश्लेषण करने मे सक्षम होता है, किन्तु यदि वामपन्थी प्रभाव जोर पकड़ गया तो वह किसी भी श्रमिक नेता

की तुलना मे इनकलाब जिन्दाबाद' का नारा इतनी तेज और तीखी आवाज मे उछालेगा कि मीडिया के प्रचार तन्त्र का वही केन्द्रबिन्दु बन जायगा, किन्तु जब सत्ताधारी उन्ही वामपन्थी नेताओ पर जुल्म ढाना शुरू करेगा तो वही शोरबाज मुखबिर बन कर मुखर हो जायेगा। वामपन्थ की पीठ मे छुरा भोक देगा। किसी से सुपारी लेकर (हत्या करने हेतु बडी रकम लेकर) हत्यारा बन जायगा। फिर कोई भले ही कहता फिरे कि वह ऐसा तो नही दिखता था।'

मध्यम वर्ग का एक शिखर है प्रबुद्ध अफसरशाही। वह एक अत्यन्त प्रतिभाशाली बुद्धिजीवी है—एक ऐसी विकृत अनिवार्यता कि उसके बिना प्रशासन तन्त्र का पत्ता भी नही हिल सकता। उसकी मधुर मुस्कान मे उसकी द्वयार्थक अभिव्यक्ति मे न जाने कितने रहस्य छिपे पडे हैं जिन्हे कोई नही जान सकता। वह आसानी से सामने वाले की अक्ल निकाल सकता है और अपनी अक्ल को उसकी जहन मे घुसा भी सकता है। उसने जिसे तख्त पर बिठाया उसके नीचे से तख्ता हटवा भी लिया है। वह अपने-आप मे अनेक रूप रूपाय है।

पूँजीपति वर्ग मध्यम वर्ग की मैनेजरी का कायल है तो श्रमिकवर्ग भी कभी-कभी उसके प्रति हाँ-ना' मे धोखा खा सकता है। अन्तत तो वह अपनी स्थिति को ऊर्ध्वोन्मुखी ही रखता है। गोटियाँ फिट करने मे माहिर वह मात का खेल नहीं खेलता इसीलिए वह अपनी अनिवार्यता बनाए रखता है।

अपनी विशेषताओ और कमजोरियो के कारण मध्यम वर्ग अपनी उपस्थिति तो दर्ज करवाता रहता है लेकिन वह अपनी डगमगाती गतिशीलता की वजह से निर्णायक शक्ति नही बन सकता युग-परिवर्तनकारी क्षमता हासिल नहीं कर सकता।

श्रमिक वर्ग—श्रम, श्रमिक और उत्पादन एक अविच्छिन्न इकाई है। श्रम उत्पादन और पूँजी की एक और इकाई बनती है। दोनो इकाइयो मे निहित है उत्पादन प्रणाली और उत्पादन के सम्बन्ध। यह उत्पादन प्रणाली की गतिशीलता ही है जो सामाजिक अवस्थाओ मे क्रान्तिकारी परिवर्तन का मौलिक आधार है। इस क्रान्तिकारी परिवर्तन की वजह से उत्पादन के सम्बन्ध बदलते हैं जो उत्पादन प्रणाली का ही एक अनिवार्य घटक है। सामन्तवाद से पूँजीवाद मे सक्रमण इसी उत्पादन प्रणाली का प्रतिफल है। पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली मे अन्तर्निहित उत्पादन-सम्बन्ध पूँजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग के बीच के द्वन्द्वात्मक सम्बन्धो को अभिव्यक्त करते हैं। इन सम्बन्धो को द्वन्द्वात्मकता की नियमत्रयी के बिना नहीं समझा जा सकता। यह नियमत्रयी

है—विरोधियो की एकता और सघर्ष, परिमाण का मात्रानुसार गुण मे रूपान्तरण और निषेध का फिर निषेध।

पूँजीपति और सर्वहारा श्रमिक परस्पर विरोधी हितो के व्यक्ति हैं, किन्तु उत्पादक श्रम उन्हे जोड़ने वाली आवश्यक कडी है। दोनो के हित परस्पर विरोधी (शोषक और शाषित) होते हैं, अत विषमता बढती है और इसका परिणाम होता है सघर्ष का होना।

ज्यो-ज्यो पूँजीपति वर्ग का अर्थात् पूँजीवाद का परिमाणात्मक विकास होता है तो साथ ही श्रमिक वर्ग और श्रम का उसी अनुपात मे परिमाणात्मक विकास भी होता है। जब पूँजीवाद का परिमाणात्मक विकास गुणात्मकता (विकसित वैज्ञानिक अनुसन्धान और तकनीकी विकास) मे रूपान्तरित हो जाता है तो श्रमिक वर्ग भी अधिकाधिक कुशल होता जाता है और श्रम मे शारीरिक ताकत लगाने की जरूरत कम होती जाती है अब वह बटन दबा कर उससे कही ज्यादा अच्छा, अधिक और फुर्ती वाला श्रम करने मे सक्षम हो जाता है।

अब श्रमिक वर्ग की सगठनात्मक चेतना का और सघर्ष की विधा का विकास भी उसी अनुपात मे होने लगता है जिस अनुपात मे पूँजीवाद का तकनीकी विकास हाता है। मोबाइल और कम्प्यूटर का उपयोग व्यापार मे भी होता है तो श्रमिका के सघर्षों की अगुवाई करने वाले श्रमिक सगठनो और उनसे सम्बन्धित राजनीतिक वाम दलो द्वारा सचालित किए जाने वाले बहुआयामी सघषा मे भी।

तीसरा नियम है निषेध का निषेध। जैसे दासप्रथा का निषेध सामन्तवाद ने किया और वह निषेधक हो गया। उस निषेधक के विगत निषेध का निषेध अर्थात् सामन्ती प्रथा का निषेध कर दिया पूँजीवाद की उत्पादन प्रणाली ने। इस प्रकार पूँजीवाद बना सामन्तवाद का निषेधक। इसी पूँजीवादी निषेधक का निषेध उसके भीतर के वैषम्य के परिमाणात्मक अतिरेक से अर्थात् उत्पादन प्रणाली की गतिशीलता अर्थात् श्रमशीलता के उच्चतम विकास से अनिवार्यत सम्भव होगा।

इसी उपर्युक्त ऐतिहासिक भौतिकवाद की द्वन्द्वात्मक नियमत्रयी के आधार पर मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग को एकमात्र क्रान्तिकारी वर्ग घोषित किया। श्रमिक वर्ग ही एक ऐसी वस्तुगत इकाई है जो उत्पादकता से सीधे तौर पर जुडा हुआ है। पूँजीवाद चाहे वित्तीय पूँजी की बैसाखी पर चले वायदा-अनुबन्ध की हवाई लेनी-बेची, बेची-लेनी की मोबाइली कॉलो पर तिकड़मे करे या शेयर

बाजार के घोटालो और उसकी सट्टेबाजी की पूँछ पकडे अथवा मुद्रा बाजार की कालिमा धारण करता रहे—न तो माल से अलग अपना अस्तित्व कायम रख सकता है और न ही उत्पादन प्रणाली से। और माल मोल बाजार आदि सब वस्तुपरक है, श्रमसाध्य श्रमिक सापेक्ष। कोई-न-कोई तो मशीनो मे कीले-पाती ठोकने वाला होगा ही कोई-न-कोई तो कच्चा माल खोद कर उगा कर या और किसी तरीके से पैदा करेगा ही। श्रमिक वर्ग पूँजीपति वर्ग का अन्त करने के बाद ही समाज को वर्गरहित कर सकेगा।

आज का श्रमिक केवल पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की मशीन का पुर्जा मात्र नही है। वह एक सचेत और सजग मनुष्य है समाज की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इकाई है। वह सभ्यता और सस्कृति का सर्जक है। वह उत्पादन प्रक्रिया का अनिवार्य अग है। वह बहुआयामी व्यक्तित्व है—पारिवारिक सामाजिक सामुदायिक नैतिक और राजनीतिक। वह साहित्यिक कलात्मक, वैचारिक वैज्ञानिक आनुसन्धानिक तकनीकी विकास आदि गतिविधियो से भली-भाँति परिचित और सम्बन्धित हो चुका है। आज उसका सरोकार बहुआयामी है। पूँजीवाद मे उसके केवल आर्थिक पहलू की ओर ही दृष्टिपात किया जाता है। पूँजीवाद तो श्रमिक को वन डाइमेशनल मैन' अर्थात् एकआयामी मानव (आर्थिक इकाई) मात्र समझता है।

श्रमिक सबसे ज्यादा ईमानदार दृढनिश्चयी सवेदनशील कार्यकुशल और जुझारु होता है। वही एक ऐसा व्यक्ति होता है जो हर प्रकार का बलिदान देने के लिए तैयार रहता है क्योकि उसके पास खोने को अपनी अभावग्रस्तता के अलावा और कुछ नहीं होता और उसके पास मजदूरी के अलावा और कुछ पाने की न कोई गुजाइश होती है न कोई लालसा। वह कठोर और दुरुह चढाइयो की जिन्दगी जीता है।

वह झगडालू नही सघर्षशील होता है। अपने सगठन मे सक्रिय भागीदारी निभाना अपना दायित्व समझता है। उसमे पूँजीपतियो वाली पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा नही होती। वह स्वभावत न तो साम्प्रदायिक सकीर्णता का शिकार होता है और न ही जातिवादी झगड़ो का।

श्रमिक वर्ग और पूँजीपति वर्ग उन विपरीत दिशासूचक चुम्बक सूइयो की तरह से है जो परस्पर एक साथ होते हुए भी विपरीत दिशाओ की ओर ही उन्मुख रहती हैं।

श्रमिक वर्ग शोषित ही रहता है जबकि पूँजीपति वर्ग शोषक ही।

श्रमिकवर्ग सारे उत्पादन का कर्ता-धर्ता है, जबकि पूँजीपति वर्ग वास्तविक उत्पादन क्रिया में कतई हाथ नही लगाता। श्रमिक के श्रम के आधार पर पूँजीपति वर्ग अधिशेष मूल्य का अर्जन करता है जिससे वह अपने पूँजीवादी उद्योगो का विकास भी करता है और ऐश-आराम की जिन्दगी जीने के साधन भी जुटा लेता है।

पूँजीपति तालाबन्दी छँटनी, कम्पनी का विलयीकरण विलोपन यान्त्रिक परिष्करण आदि अनेक उपाय करके श्रमिक को बेरोजगारी भुखमरी पारिवारिक हत्या और आत्महत्या करने की स्थिति मे धकेल देता है। श्रमिक वर्ग सगठित होकर जब उसके विरोध मे सघर्ष करता है तो पूँजीपति वर्ग सत्ता का सहारा लेकर श्रमिक सगठनो का दमन और उत्पीड़न करने भ्रष्ट नेताओ को खरीदने, फर्जी सगठन खड़ा करवा कर बिखराव पैदा करने और नेताओं को झूठे मुकदमो मे फँसाने जैसे अनेक उपाय काम मे लेता है, किन्तु जब देखता है कि उसका कोई उपाय कारगर नहीं हो पा रहा है तो वह समझौता करने को विवश हो जाता है। फिर भी वह बुद्धिजीवी नौकरशाही का सहारा लेकर समझौते की दुतरफी भाषा का प्रारूप मजूर करवा कर धोखा देने की कोशिश करता है। सत्ता और अधिकारी वर्ग अमूमन पूँजीपति का ही पक्षकार बनते हैं। पूँजीवादी ससदीय लोकतन्त्र कार्यपालिका और न्यायपालिका मिल कर पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग को भरसक सरक्षण देते है, श्रमिक वर्ग को सिवा झूठे आश्वासनो के और कुछ नही मिलता।

श्रम-शोषण को और सघन करने के लिए तथा श्रमिको का दमन और उत्पीडन की बढोतरी के लिए पूँजीपति वर्ग सामन्ती अवशिष्टो धार्मिक सस्थाओ और उनके नेताओ साम्प्रदायिक वैमनस्य और जातिगत रूढियो और अन्धविश्वासो का पूरी तरह उपयोग करता है। वह अपनी खरीदी क्षमता को भरपूर काम मे लेता है। मीडिया तो उसका अपना होता ही है। ऐसे मे श्रमिक वर्ग को अपने और अपने विश्वसनीय श्रम-सगठन के बलबूते पर ही मैदान मे उतरना होता है। वह जानता है कि उसके विरोधी वर्ग के हाथ बहुत लम्बे है पर साथ ही उसे अपनी वस्तुगत सचाई पर अटूट विश्वास है इसीलिए वह अपने सिर पर कफन बाँध कर न सिर्फ अपने आर्थिक हित के लिए, बल्कि पराधीनता के खिलाफ स्वाधीनता के लिए राजनीतिक सामाजिक, सास्कृतिक और शोषणमुक्त व्यवस्था के लिए जूझता रहता है।

पक्षधरता और प्रतिबद्धता—आज का मानव-समाज शोषित और शोषक वर्गो मे विभाजित है। अत यह सवाल स्वाभाविकत इस उत्तर की अपेक्षा रखता

है कि कौन किसके पक्ष का समर्थन करता है जो आगे बढ कर इस प्रश्न मे बदल सकता है कि आपकी प्रतिबद्धता किस वर्ग के प्रति है? अन्तत हम तटस्थ नही रह सकते है—क्योकि वर्गीय समाज मे तटीयता की कोई गुजाइश नहीं होती वह इसलिए कि हम मे से प्रत्येक समाज का एक सक्रिय अग है जो उसके अस्तित्व की एक लाजिमी शर्त है। पक्षधरता या प्रतिबद्धता से कटा हुआ न तो कवि ही रह सकता है और न सन्यासी या साधु-साध्वी ही।

यहाँ मूल प्रश्न यह है कि आपकी पक्षधरता और इससे भी बढ़ कर आपकी प्रतिबद्धता श्रमिक वर्ग के प्रति है कि पूँजीपति वर्ग के प्रति? यह केवल यह कह देने से नही प्रमाणित होगा कि आप अर्थात् हम श्रमिक वर्ग के पक्ष मे हैं क्योकि कोई भी अपने-आप को पूँजीपति वर्ग अर्थात् शोषक वर्ग का पक्षधर इसलिए नही बता सकता क्योकि पूँजीपति वर्ग शोषण के माध्यम से श्रमिक वर्ग का रक्त-पिपासु होता है, सर्वतोभावेन अपराधी और घृणित कलकित तथा बदनाम होता है। इसलिए किसी की पक्षधरता को उसकी अपनी जीवन-प्रणाली उसकी आय के स्रोत क्रियाशीलता और अन्तत राजनीतिक अर्थशास्त्र और तज्जनित सगठन के साथ उसके जुडाव से ही प्रमाणित किया जा सकता है।

घोषणा-पत्र के अनुसार प्रतिक्रियावादी 'समाजवाद' मे आते हैं—सामन्ती समाजवाद पैटी-बुर्जुआ समाजवाद अथवा जर्मन या सच्चा समाजवाद। जाहिर है उनके अवशेष आज भी है जो सदैव श्रमिक वर्ग के छिपे या जाहिराना दुश्मन होगे। कट्टर और बुर्जुआ समाजवाद लफ्फाज-काल्पनिक समाजवाद और साम्यवाद भी अन्तत श्रमिक सघर्ष से मुँह मोड़ लेगे। केवल उनके द्वारा की गई शोषक वर्ग की आलोचना का ही श्रमिक आन्दोलनो मे उपयोग किया जा सकता है।

वे कम्युनिस्ट जो वस्तुगत परिस्थितियो का वैज्ञानिक द्वन्द्ववाद के मद्देनजर आलोचनात्मक विवेचन कर सकते हैं राजनीतिक-आर्थिक स्थितियों का आकलन कर सकते हैं तथा जो श्रमिक वर्ग के सघर्षों का अनुभव रखते हैं या उनमे भागीदारी निभाते हैं तथा जो यथार्थ और आदर्श प्रगतिशीलता और प्रतिक्रियावाद के भेद को स्पष्टतया विश्लेषित कर सकते हैं—वे ही श्रमिक वर्ग की प्रतिबद्धता का दावा कर सकते हैं। वे ही अन्य जनतान्त्रिक शक्तियो को श्रमिकवर्ग के पक्ष मे एकताबद्ध कर सकते हैं। वे उत्पादन-प्रणाली और विशेषकर उत्पादन-सम्बन्धो को केन्द्र मे बनाए रख सकते हैं।

कम्युनिस्ट पार्टियो का वैचारिक आधार मार्क्स-एगेल्स द्वारा प्रतिपादित

दार्शनिक और ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। दुनिया की सभी कम्युनिस्ट पार्टियो के विधानो मे इसी को आधारभूत सिद्धान्त घोषित किया हुआ है। सब की सरचना का आधार जनवादी केन्द्रीयता है। सब की प्रतिबद्धता श्रमिक वर्ग के प्रति दर्शायी गयी है। सब का सर्वोच्च अधिवेशन पार्टी काग्रेस' कहलाता है जो पार्टी सविधान म अकित अवधि के बाद आयोजित किया जाता है। प्रत्येक सदस्य अपने निर्धारित फ्रण्ट पर सक्रिय होता है। प्रत्येक को अपनी आय का खुलासा करना पड़ता है जिसके अनुसार लेवी-देनी हाती है जो निर्धारित शुल्क के अलावा होती है। पार्टी का एक केन्द्रीय और एक राज्य अनुशासन आयोग होता है। इसी तरह एक केन्द्रीय और एक राज्य-स्तरीय वित्त आयोग होता है। इसी तर्ज पर एक केन्द्रीय और एक राज्य-स्तरीय श्रमिक, कृषक और व्यावसायिक सगठनो की समन्वयक सचालन इकाई होती है जो सघर्षों का मार्गदर्शन करती रहती है। यह इस प्रकार का ढाँचा सभी देशा की कम्युनिस्ट पार्टियो मे पाया जाता है। सब के ये समान आह्वान होते हैं—

दुनिया-भर के मेहनतकशो, एक हो।' और इनकलाब जिन्दाबाद।'

राजनीतिक पार्टियो मे कोई क्षेत्र-भाषा-विशेष की क्षेत्रीय पार्टी है जिसकी केन्द्रीय चिन्ता क्षेत्रीय ही होती है श्रमकेन्द्रित नही कोई राष्ट्रवादी राजनीतिक पार्टी, जिसका केन्द्रीय विषय है 'राष्ट्रीयता'—अन्तरराष्ट्रीय श्रमसम्बन्ध नही कोई साम्प्रदायिक-राजनीतिक पार्टी है वह प्रमुख रूप से अपने सम्प्रदाय-विशेष को केन्द्रविन्दु बना कर राजनीतिक खल खेलती है उसका वस्तुगत श्रमिक-सरोकार नही होता, कोई मजहबी राजनीतिक पार्टी होती है जिसकी मुख्य समस्या मजहबी राजनीति करना है—उसका श्रमिक वर्ग से रस्मी सरोकार मात्र है कोई आध्यात्म का मुखौटा लगाए छद्म राजनीति करती है—वह सर्वोदयी बन कर सामने आती है। उसके लिए पूँजीपति और श्रमिक, सब भाई-भाई' होते हैं। कोई व्यक्तिवादी पार्टी है जिसने गरीबी उन्मूलन' का लबादा पहन रखा है, कोई सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी है जो लोकतन्त्र की सुरक्षा का कवच धारण किए पूँजीवाद की सरक्षिका है कोई पार्टी समाजवाद की बहुरगी चादर ओढे हुए पूँजीवाद की बगल मे पल रही है, कोई 'लेबर पार्टी बन कर पूँजीवाद की गोद चढ़ गई है तो कोई रिपब्लिकन' या 'डेमोक्रेटिक' या इस तरह की और नामधारी पार्टियाँ हैं जो सब बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की चरण-सेविकाएँ मात्र हैं। इनमे आज यदि कोई राष्ट्रीय या अन्तरराष्ट्रीय श्रम-सघर्षो मे तपी या पकी पार्टियाँ हैं ये हैं केवल कम्युनिस्ट पार्टियाँ। कम्युनिस्ट पार्टियो के मुकाबले म कोई भी श्रमिक वर्ग के सघर्षो के प्रति न तो ईमानदार है और

न ही विश्वसनीय। श्रमिक वर्ग मे बिखराव पैदा करने उसे भ्रमित करने अथवा उसकी पीठ मे छुरा भोकने वाली तो कई अन्यान्य पार्टियाँ मौजूद रहती हैं।

पूँजीवाद के विकास की एक सीमा है उस सीमा तक ऊपर उठने के बाद वह अपने विकास की क्षमता खोता चला जायेगा। पूँजीवादी विकास–क्षमता के समाप्त होने का लक्षण होगा—मुद्रास्फीति मे अनियन्त्रित वृद्धि, बेकाबू मन्दी का दौर प्रतिस्पर्द्धाओ का विकराल रूप धारण करते जाना बाजार मे अराजकता बेरोजगारी और भुखमरी का विस्फोटक रूप सामने आना और चारो ओर अपसस्कृति को खुल कर खेलने की छूट मिलना। ऐसे मे पूँजीवाद उत्पादन के विकास मे स्वय अवरोधक बनता चला जायेगा किन्तु श्रमिक–चेतना और श्रमिक सघर्षो का विकास बजाय अवरुद्ध होने के और ज्यादा व्यापक होता चला जायेगा। ज्यो–ज्यो वह व्यापक होगा परिस्थितियाँ उसके अनुकूल होती चली जायेगी। ऐसे दौर मे उपर्युक्त क्षेत्रीय, राष्ट्रीय मजहबी साम्प्रदायिक पार्टियाँ विलीन होती चली जायेगी। अन्तत आगे के विकासक्रम को जारी रखने का दायित्व श्रमिक सगठनो और कम्युनिस्ट पार्टियो को ही वहन करना होगा।

इसके लिए हर जगह जनवादी शक्तियो का सघनीकरण, श्रमिक वर्ग की क्षमताओ का समेकीकरण और कम्युनिस्ट पार्टियो का अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पुन एकीकरण करना होगा। एक–एक कर पूँजीवादी सत्ताओ का ध्वस्तीकरण करना होगा। नये सविधान रचने होगे। पूँजीवादी सत्तातन्त्र को तोडना ही होगा। नयी वैधानिक सस्थाओ का निर्माण करना होगा। अर्थव्यवस्था की प्रारम्भिक दौर मे जनवादी श्रमिक वर्गीय सत्ता के अधीन हस्तगत करना ही होगा। मीडिया और सूचना तन्त्र को पूँजीवादी (तथैव क्षेत्रवादी एव सम्प्रदायवादी) अवशेषो से सर्वथा मुक्त करना होगा। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के बहाने जनवादी श्रमिक वर्ग विरोधी किसी प्रकार की स्वच्छन्दता को छूट नही दी जायेगी बजाय इसके उसको जनवादी नियन्त्रण मे लेना होगा।

ऐय्याशी फैशनपरस्ती नशाखोरी के उत्पादन और विपणन को समाप्त कर बाजार को पूँजीवादी मालो के अवशिष्टो से मुक्त कर दिया जायेगा। जनसाधारण के उपभोग की वस्तुओ को सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के अन्तर्गत लाया जायेगा। उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्रो द्वारा किया जायेगा। वितरण व्यवस्था पूरी तरह सार्वजनिक होगी।

वायु प्रदूषण ध्वनि प्रदूषण और जल प्रदूषण को सम्पूर्ण सख्ती के साथ समाप्त करना होगा। इसके लिए यातायात के प्रदूषणीय स्रोतो को समाप्त

करना, मूर्ति-विसर्जन की प्रथा पर कानूनी राक लगाना प्राकृतिक और कृत्रिम जल-स्रोतो पर धार्मिक स्नान-प्रणालियो को समाप्त करना शवो-अर्द्धजले शवो को नदियो मे बहाने का वर्जित करना दीपदानो को वर्जित करना, अस्थि-विसर्जन को समाप्त करना, जलमहला तथा जलमन्दिरो से जलाशया को मुक्त करना नौका-विहारो को नियन्त्रित करना आदि इसी तरह धर्मस्थलो से ध्वनि प्रसारण यन्त्रो को पूरी तरह हटा देना धार्मिक जुलूसा-झाँकियो, वैवाहिक बराती जुलूसो-पटाखावाजी जैसे बेहूदा कामो पर कानूनी और कार्यकारी प्रतिबन्ध लगाना होगा। अन्तरिक्षीय प्रदूषण को भी इसी प्रकार काबू मे लाना होगा जिसके लिए वैश्विक विधान और न्याय प्रणाली व्यवस्था दगी।

शिक्षा को वैज्ञानिक उपकरणो द्वारा पुनर्गठित करना होगा। सस्थाएँ सार्वजनिक और सार्विक होगी। दृश्य-श्रव्य साधनो की अधिकता से पुस्तकीय बोझिलता को समाप्त कर दिया जायेगा। पाठ्यक्रम और पाठ्य विषयवस्तु को राष्ट्रवाद और क्षेत्रवाद से पूरी तरह मुक्त करना होगा। उनमे न कही नायकत्व दिखाई देगा न महात्माई प्रवचन। वह उपदेशमुक्त होगी। उसमे विज्ञान दर्शन और विश्व-इतिहास के सर्वमान्य निष्कर्ष होगे। परीक्षा प्रणाली को अधिकाधिक प्रायोगिक व व्यावहारिक बनाया जायेगा। नय प्रयोगो, अनुसन्धानो और नवाचारो को ज्यादा-से-ज्यादा अवसर दिया जायेगा। सारत शिक्षा को भावुकता अथवा भावप्रधानता से मुक्त कर प्रकृतिप्रधान चेतनाप्रधान विज्ञानप्रधान और अन्तरराष्ट्रीयतामूलक मानवमूल्यो से परिपूर्ण करना होगा।

वर्ग-विसर्जन

दुनिया के शोषण और प्रदूषण को समाप्त करके और सार्वजनिक वितरण को पूरी तरह लागू करने के बाद का दूसरा चरण होगा वर्गीयता को विलुप्त करना वर्गीय वर्चस्व को मानवमूल्यो मे विसर्जित करना। यह काम श्रमिक वर्ग ही पूरा करेगा। वह सत्तातन्त्र को जो उसी के वर्चस्व का है—जनतन्त्रीकरण मे चरणबद्ध व योजनापूर्ण विधि से रूपान्तरित करेगा। युद्धकारी परिस्थितियो की सम्भावनाओ के नेस्तनाबूद कर दिए जाने के बाद सैनिक तन्त्र का जनतन्त्र मे विसर्जन कर दिया जायेगा। इसके पश्चात् हर जगह जनमूल्यो और उसके व्यवहार-मूल्यो का विकास उस स्तर तक पहुँच सकेगा कि धरातल पर पुलिस तन्त्र का क्रमिक विसर्जन सम्भव हो सकेगा। बेरोजगारी और भुखमरी ही जब समाप्त कर दी जायेगी तो अपराध-वृत्ति और उसकी मानसिकता स्वभावत विसर्जन की ओर उन्मुख होगी।

आप कहेगे, यह यूटोपिया है काल्पनिक उड़ान स्वप्निल आकाक्षा—ऐतिहासिक एव द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विगत अवस्थाएँ कहेगी, नहीं यह पूर्व-पृष्ठभूमि पर आधारित अनुभवो अथवा निष्कर्षो का सम्भावित वस्तुगत यथार्थ है। उत्पादक शक्तियो अथवा उत्पादन-ससाधनो के विकास ने दासप्रथा के गर्भ से सामन्ती उत्पादन प्रणाली का विकास कर दास वर्ग के उत्पीड़न से समाज को मुक्त किया फिर सामन्ती प्रथा की उत्पादन प्रणाली के गर्भ से पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का उद्भव और विकास सम्भव हुआ और समाज राजा-बादशाहो के वशवादी अत्याचारो एव सामन्तो के उत्पीडन से मुक्त हुआ। पूँजीवाद की उत्पादन प्रणाली उच्चतम स्तर तक पहुँच चुकी है साथ ही वर्गीय समाज की उच्चतम अवस्था मे इस अवस्था के गर्भ से वर्गीय उत्पादन प्रणाली का पैदा होना सम्भव नही होगा, न ही वर्गीयता का कायम रहना ही सम्भव होगा। अत इस उच्चतम वर्गीयता के भीतर से एकमात्र विकल्प वर्गहीनता की उत्पत्ति की सम्भावना ही शेष रह जाती है। इसका एक लक्षण है पूँजीवाद की उत्पादन प्रणाली मे वृद्धिमान विस्फोटक अन्तर्विरोध साम्राज्यवादी अवस्था मे वृद्धिमान अन्तर्विरोधो की विस्फोटक स्थिति और अन्तिम विश्लेषण मे श्रमिक वर्ग-चेतना और वर्ग-सघर्षो मे मात्रात्मकता से गुणात्मकता मे रूपान्तरण।

अकाट्य तर्क के साथ मार्क्स ने सिद्ध किया कि जिस तरह सामतवाद का स्थान पूजीवाद ने ले लिया, उसी तरह पूजीवाद भी विकास के वस्तुगत नियमा क कारण अपने विनाश की ओर, एक वर्गविहीन समाज की ओर बढ रहा है।

—गेनरिख वोल्कोव